जैनपरम्परा और यापनीयसंघ

(जैन संघों के इतिहास, साहित्य, सिद्धान्त और आचार की गवेषणा)

द्वितीय खण्ड

कुन्दकुन्द का समय
षट्खण्डागम एवं कसायपाहुड की कर्तृपरम्परा

प्रो० (डॉ०) रतनचन्द्र जैन

पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष : संस्कृतविभाग
शा० हमीदिया स्नातकोत्तर महाविद्यालय
भोपाल, म.प्र.

पूर्व रीडर : प्राकृत
तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति विभाग
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय
भोपाल, म.प्र.

सर्वोदय जैन विद्यापीठ, आगरा (उ.प्र.)

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ISBN 81 - 902788 - 0 - 0 (Set)
ISBN 81 - 902788 - 2 - 7 (Volume II)

सर्वोदय जैन विद्यापीठ ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क 1

जैनपरम्परा और यापनीयसंघ

द्वितीय खण्ड

प्रो० (डॉ०) रतनचन्द्र जैन

प्रकाशक

सर्वोदय जैन विद्यापीठ

1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी

आगरा — 282002, उ०प्र०

दूरभाष : 0562 - 2852278

लिप्यङ्कन : समता प्रेस, भोपाल

मुद्रक : **दीप प्रिण्टर्स**

70ए, रामा रोड, इंडस्ट्रियल एरिया, कीर्ति नगर, नई दिल्ली-110015

दूरभाष : 09871196002

प्रथम संस्करण : वी० नि० सं० 2535, ई० 2009

प्रतियाँ : 1000

मूल्य : 500 रुपये

सर्वाधिकार : प्रो० (डॉ०) रतनचन्द्र जैन

JAINA PARAMPARĀ AURA YĀPANĪYA SAṄGHA

Vol. II

By Prof. (Dr.) Ratana Chandra Jaina

Published by

Sarvodaya Jaina Vidyāpīṭha

1 / 205, Professors' Colony

AGRA — 282002, U.P.

First Edition : 1000

Price : Rs. 500

© : Prof. (Dr.) Ratana Chandra Jaina

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

समर्पण

ईसोत्तर २०वीं-२१वीं शती के अद्भुत, अद्वितीय,
अतिलोकप्रिय दिगम्बरजैन मुनि परमपूज्य
आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज को,

जिनकी

प्रगाढ़ आगमश्रद्धा, तलस्पर्शी आगमज्ञान एवं
आगमनिष्ठचर्या ने इस पंचमकाल में मुनिपद को
प्रामाणिकता और श्रद्धास्पदता प्रदान की है,

जिनके

अलौकिक आकर्षण के वशीभूत हो अनगिनत
युवा-युवतियाँ भोगपथ का परित्याग कर
योगपथ के पथिक बन गये और निरन्तर बन रहे हैं,

जिनकी

वात्सल्यमयी दृष्टि, अर्त्तिहारिणी मुस्कान एवं
हित-मित-प्रिय वचन दर्शनार्थियों को
आनन्द के सागर में डुबा देते हैं,

जिनके

वात्सल्यप्रसाद का पात्र में भी बना हूँ तथा जिन्होंने
अनेक शुभ उत्तरदायित्व आशीर्वाद में प्रदान कर
मेरे जीवन के अन्तिम चरण को धर्मध्यान-केन्द्रित
बना दिया।

नमोऽस्तु।

गुरुचरणानुरागी
रतनचन्द्र जैन

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

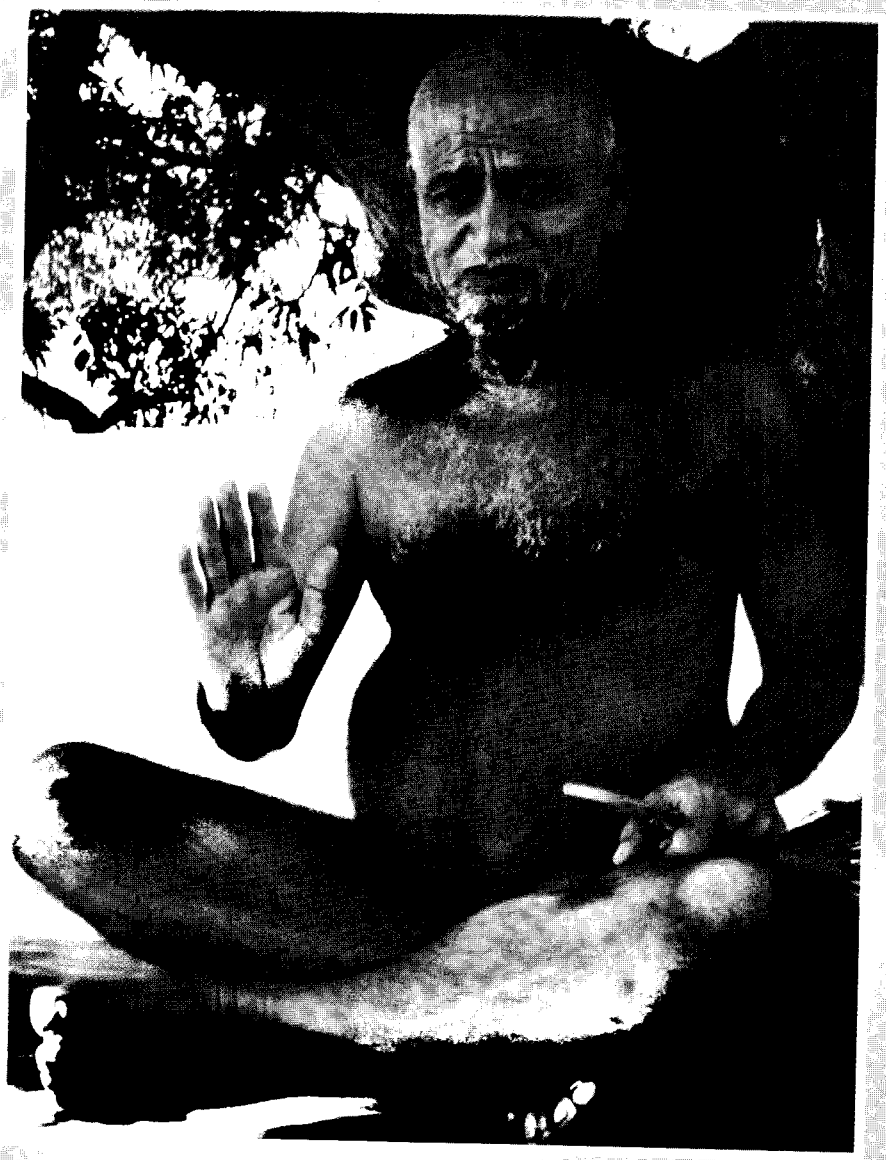

परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठाङ्क

- तीनों खण्डों की विषयवस्तु का परिचय — पच्चीस
- संकेताक्षर-विवरण — इकतालीस

द्वितीय खण्ड

कुन्दकुन्द का समय
षट्खण्डागम एवं कसायपाहुड की कर्तृपरम्परा

अष्टम अध्याय

कुन्दकुन्द के प्रथमतः भट्टारक होने की कथा मनगढ़न्त

प्रथम प्रकरण—भट्टारक होने की कल्पना का हेतु ३

द्वितीय प्रकरण—कुन्दकुन्द को भट्टारक सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत हेतु ५

१. भट्टारकपरम्परा के विकास के तीन रूपों की कल्पना ५
   - नन्दिसंघ की पट्टावली के आचार्यों की नामावली ७

२. इण्डियन ऐण्टिक्वेरी-पट्टावली का मूल अँगरेजीपाठ १२
   - २.१. प्रो. हार्नले द्वारा सम्पादित नन्दिसंघ की तालिकाबद्ध पट्टावली १४
   - २.२. स्तम्भों (कालमों) में प्रयुक्त संकेताक्षरों का अभिप्राय १८
   - २.३. आ. हस्तीमल जी-उद्धृत पट्टावली में इण्डि. ऐण्टि.-पट्टावली से कुछ भिन्नता १८

३. इण्डियन ऐण्टिक्वेरी-पट्टावली की आधारभूत पट्टावलियाँ २२
   - नन्दिसंघ की प्राकृत-पट्टावली २५
   - वीरनिर्वाण के पश्चात् आचार्यों का पट्टकाल २५

४.४. दक्षिणा-चढ़ावा-भेंट-शुल्क आदि से अर्थोपार्जन ७७
४.५. राजोचित वैभव एवं प्रभुत्व तथा ऐश्वर्यमय निरंकुश जीवनशैली ७८
४.६. 'जैनाचार्य-परम्परा-महिमा' ग्रन्थ से समर्थन ८२
□ विकट परिस्थितियों में भट्टारकपरम्परा का प्रादुर्भाव ८२
□ भट्टारकपरम्परा के प्रथम आचार्य का पट्टाभिषेक ९१
□ भट्टारकपीठों की सर्वप्रथम स्थापना ९२
□ श्रवणबेल्गोलतीर्थ तथा वहाँ मुख्यपीठ की स्थापना ९२
□ आचार्य माघनन्दी का समय ९९
४.७. उपर्युक्त कथा की समीक्षा १०१
५. मन्दिरमठवासी-मुनिपरम्परा भट्टारक-परम्परा नहीं १०१
५.१. आचार्य हस्तीमल जी के मत का निरसन १०२
५.२. 'भट्टारक' संज्ञा का प्रयोग आकस्मिक १०४
५.३. आरंभ में भट्टारक दिगम्बराचार्यों के शिष्य १०५
६. कुन्दकुन्द अजिनोक्त-सवस्त्रसाधुलिंगी भट्टारकसम्प्रदाय से पूर्ववर्ती १०९

पञ्चम प्रकरण—नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती यापनीय नहीं, दिगम्बर थे १११

षष्ठ प्रकरण—भट्टारक-पदस्थापनविधि आगमोक्त नहीं ११५

१. भट्टारक-पदस्थापना-विधि का मूलपाठ ११६
२. आचार्य-पदस्थापना-विधि का मूलपाठ १२१
३. उपाध्याय-पददान-विधि का मूलपाठ १२१

सप्तम प्रकरण—भट्टारकपरम्परा के प्रति विद्रोह : तेरापन्थ का उदय १२४

१. जिनशासन का मिथ्यात्वीकरण १२४
२. विद्रोह एवं तेरापन्थ का उदय १३३
२.१. पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री का मत १३३
२.२. पं० नाथूराम जी प्रेमी का मत १३४
३. बुन्देलखण्ड में भट्टारकशासन की अन्तिम सदी १८वीं ई० १३६
४. तेरापन्थ के उदय की प्रतिक्रिया १३७
५. भट्टारकों के स्वरूप में कालकृत परिवर्तन १४७

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

६. जिनशासन में मिलावट को रोकना आवश्यक १४८
विस्तृत सन्दर्भ १५२
१. नन्दिसंघ की प्राकृत पट्टावली १५२
२. प्रो. हार्नले द्वारा सम्पादित नन्दिसंघ की पट्टावली का शेष अंश १५७
३. प्रथम शुभचन्द्रकृत नन्दिसंघ की गुर्वावली १६८
४. श्रवणबेलगोल-महानवमी मण्डप के एक स्तम्भ पर उत्कीर्ण नन्दिसंघ की पट्टावली १७५

नवम अध्याय

गुरुनाम तथा कुन्दकुन्दनाम-अनुल्लेख के कारण

१. गुरुनाम-अनुल्लेख का कारण १८१
२. कुन्दकुन्दनाम-अनुल्लेख का कारण १८३
२.१. आचार्य हस्तीमल जी के मत का निरसन १८३
२.२. प्रो० एम० ए० ढाकी के मत का निरसन १८६
२.३. प्रेमी जी के मत का निरसन १८६
२.४. नाम-अनुल्लेख का कारण : नाम से अनभिज्ञता १८७

दशम अध्याय

आचार्य कुन्दकुन्द का समय

प्रथम प्रकरण—ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी में होने के प्रमाण १९५
१. इण्डि० ऐण्टि०-पट्टावली के अनुसार ईसापूर्वोत्तर प्रथम शती १९५
२. प्र० श० ई० की भगवती-आराधना में कुन्दकुन्द की गाथाएँ १९७
२.१. भगवती-आराधना का रचनाकाल १९७
२.२. भगवती-आराधना में कुन्दकुन्द की गाथाओं के उदाहरण २०१
२.३. कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में भगवती-आराधना की गाथाएँ नहीं २०४
३. प्र० श० ई० के मूलाचार में कुन्दकुन्द की गाथाएँ २०७
३.१. मूलाचार का रचनाकाल प्रथम शताब्दी ई० २०७
३.२. प्र०-द्वि० श० ई० के तत्त्वार्थसूत्र में मूलाचार का अनुकरण २०८
३.३. मूलाचार में तत्त्वार्थसूत्र का अनुकरण नहीं २१२

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३.४. द्वि० श० ई० की तिलोयपण्णत्ती में मूलाचार का उल्लेख २१५
३.५. मूलाचार में श्वेताम्बर ग्रन्थों की गाथाएँ नहीं २१६
३.६. मूलाचार में कुन्दकुन्द की गाथाओं के उदाहरण २१७
३.७. मूलाचार में कुन्दकुन्द की शैली का अनुकरण २२०
४. द्वि० श० ई० के तत्त्वार्थसूत्र में कुन्दकुन्द के वाक्यांश २२९
४.१. तत्त्वार्थसूत्र का रचनाकाल २२९
४.२. कुन्दकुन्द के वाक्यांशों की संस्कृत-छाया २३०
४.३. कुन्दकुन्द के द्वारा तत्त्वार्थसूत्र का अनुकरण नहीं २३१
४.४. उमास्वाति कुन्दकुन्दान्वय के आचार्य २३९
५. द्वि० श० ई० की तिलोयपण्णत्ती में कुन्दकुन्द की गाथाएँ २४०
५.१. तिलोयपण्णत्ती का रचनाकाल २४०
५.२. तिलोयपण्णत्ती में कुन्दकुन्द की गाथाओं के उदाहरण २४७
५.३. तिलोयपण्णत्ती की गाथाएँ कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में नहीं २६०
६. ५वीं श० ई० की सर्वार्थसिद्धि में कुन्दकुन्द की गाथाएँ उद्धृत २६१
६.१. सर्वार्थसिद्धि का रचनाकाल २६१
६.२. सर्वार्थसिद्धि में कुन्दकुन्द की गाथाओं के उदाहरण २६४
६.३. समाधितन्त्र-इष्टोपदेश में कुन्दकुन्द की गाथाओं का संस्कृतीकरण २६६
६.४. कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में पूज्यपाद के ग्रन्थों की सामग्री नहीं २६७
७. ६वीं श० ई० के परमात्मप्रकाश में कुन्दकुन्द का अनुकरण २६८
७.१. निश्चय-व्यवहारनयों से आत्मादि का प्ररूपण २६८
७.२. निश्चयनय से आत्मा के वर्णरागादि-रहितत्व का प्रतिपादन २६८
७.३. निश्चयनय से आत्मा के कर्म-अकर्तृत्व का प्रतिपादन २६९
७.४. निश्चयनय से सुख-दुःख के कर्मकृत होने का प्रतिपादन २६९
७.५. शुभ, अशुभ, शुद्ध भाव का प्ररूपण २७०
७.६. आत्मा के बहिरात्मादि-भेदत्रय का निरूपण २७०
७.७. कुन्दकुन्द की गाथाओं का अपभ्रंशीकरण २७१
८. ७वीं श० ई० के वरांगचरित में कुन्दकुन्द की गाथाओं का संस्कृतीकरण २७३
९. ८वीं श० ई० की विजयोदयाटीका में कुन्दकुन्द की गाथाएँ २७५

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

९.१. विजयोदया का रचनाकाल २७५
९.२. विजयोदया में कुन्दकुन्द की गाथाओं के उदाहरण २७६
१०. ८वीं श० ई० की धवला, जयधवला में कुन्दकुन्द की गाथाएँ २७८
१०.१. धवला का रचनाकाल ७८० ई० २७८
१०.२. धवला में प्रमाणस्वरूप कुन्दकुन्द की गाथाएँ एवं ग्रन्थनाम २७८
११. मर्करा-ताम्रपत्रलेख में कुन्दकुन्दान्वय का उल्लेख २८३
□ पूर्णतः कृत्रिम होने के मत का निरसन २८३
१२. ४७० ई० के पूर्व निर्ग्रन्थ-श्रमणसंघ के शास्त्रों का अस्तित्व २८९
१३. विरोधीमतों का निरसन २९०

द्वितीय प्रकरण—मुनि कल्याणविजय के मत का निरसन २९१

१. कदम्बवंशी शिवमृगेश के लिए पंचास्तिकाय की रचना २९१
□ निरसन : जयसेनाचार्य-वर्णित शिवकुमार राजा नहीं थे २९१
□ 'शिवकुमारमहाराज' नामक मुनि का उल्लेख २९६
२. नियमसार में वि० सं० ५१२ में रचित 'लोकविभाग' का उल्लेख २९९
□ निरसनः 'लोकविभागों में' यह पद लोकानुयोग-विषयक प्रकरणसमूह का वाचक, स्वतन्त्रग्रन्थ का नाम नहीं २९९
३. समयसार में तृ० श० ई० के विष्णुकर्तृत्ववाद का उल्लेख ३०१
□ निरसन : विष्णुकर्तृत्ववाद ऋग्वेदकालीन ३०२
४. षट्प्राभृतों में परवर्ती चैत्यादि एवं शिथिलाचार का वर्णन ३०४
□ निरसन : चैत्यगृह-प्रतिमादि ईसापूर्वकालीन, शिथिलाचार अनादि ३०४
५. मर्करा-ताम्रपत्र में विक्रम की ७वीं सदी के बाद प्रचलित 'भटार' शब्द का प्रयोग ३०६
□ निरसनः आदरसूचक 'भटार' शब्द का प्रचलन प्राचीन ३०६
६. कोई भी पट्टावली वीर नि० सं० के अनुसार रचित नहीं ३०७
□ निरसन : 'तिलोयपण्णत्ती' आदि में वीरनिर्वाणानुसार ही कालगणना ३०८

तृतीय प्रकरण—आचार्य हस्तीमल जी के दो मतों का निरसन ३१०

१. प्रथम मत : कुन्दकुन्द-काल ५वीं शती ई० ३१०

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

□ निरसन : केवल इण्डि० ऐन्टि०-पट्टावली प्रामाणिक, तदनुसार कुन्दकुन्दकाल ईसापूर्वोत्तर प्रथम शती ३१२
□ आचार्य हस्तीमल जी का 'मूले कुठाराघातः' ३१४
२. द्वितीय (संशोधित) मत : कुन्दकुन्दकाल ८वीं शती ई० ३१६
□ 'भूले-बिसरे ऐतिहासिक तथ्य' : गजसिंह राठौड़ ३१७
□ निरसन : कुन्दकुन्दकाल के सुनिश्चित संवत् का उल्लेख केवल इण्डि० ऐण्टि० में ३२५

चतुर्थ प्रकरण—मालवणिया जी के दार्शनिक विकासवाद का निरसन ३२९

१. मालवणिया जी की तीन अवधारणाएँ ३२९
२. कुन्दकुन्दसाहित्य में जैनेतर दर्शनों का अनुकरण नहीं ३३३
२.१. कुन्दकुन्द द्वैताद्वैत के रूप में द्वैतवाद के ही प्रतिपादक ३३३
□ मालवणिया जी का मत ३३३
□ निरसन ३३४
२.२. शाश्वत, उच्छेद, शून्य, विज्ञान आदि वस्तुधर्मों की संज्ञाएँ ३४१
□ मालवणिया जी का मत ३४१
□ निरसन ३४३
२.३. विष्णुकर्तृत्व और आत्मकर्तृत्व दोनों अपसिद्धान्त ३४६
□ मालवणिया जी का मत ३४६
□ निरसन ३४७
२.४. शुभ, अशुभ, शुद्ध उपयोग जिनोपदिष्ट ३४८
□ मालवणिया जी का मत ३४८
□ निरसन ३४८
२.५. कर्तृत्व-अकर्तृत्व का निरूपण जिनागमाश्रित ३४८
□ मालवणिया जी का मत ३४८
□ निरसन ३४९
२.६. सांख्य और जैन मतों के पारस्परिक वैपरीत्य का प्रदर्शन ३५१
□ मालवणिया जी का मत ३५१
□ निरसन ३५१
३. विषयवैविध्य एवं व्याख्या-दृष्टान्तादिगत विस्तार अर्वाचीनता के लक्षण नहीं ३५३

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

□ मालवणिया जी-प्ररूपित विषयप्रतिपादनगत विशेषताएँ ३५३
३.१. प्रमेयनिरूपणगत विशेषताएँ ३५३
३.२. प्रमाण-निरूपणगत विशेषताएँ ३५६
३.३. नय-निरूपणगत विशेषताएँ ३५८
□ निरसन ३५९
क— विषयवैविध्यादि अर्वाचीनता के लक्षण नहीं : इसके हेतु ३५९
ख— विकासवादी-मान्य लक्षणानुसार तत्त्वार्थसूत्र में विकास भी है, विस्तार भी ३६४
४. समस्त दार्शनिक तत्त्वों का अधिगम गुरुपरम्परा से ३६८

पञ्चम प्रकरण—डॉ० सागरमल जी के गुणस्थान-विकासवाद एवं सप्तभंगी-विकासवाद ३६९
१. गुणस्थान-विकासवाद ३६९
२. गुणस्थान-विकासवाद का निरसन : तत्त्वार्थसूत्र में सम्पूर्ण गुणस्थान-सिद्धान्त का प्रकाशन ३७१
२.१. गुणश्रेणिनिर्जरास्थान गुणस्थान ही हैं ३७१
२.१.१. अनन्तवियोजक का अर्थ ३७३
२.१.२. अनन्तवियोजक-असंयतसम्यग्दृष्टि संयत से अधिक निर्जरायोग्य कैसे? ३७८
२.१.३ गुणश्रेणिनिर्जरा का काल ३७९
२.२. गुणस्थानसिद्धान्त से अनभिज्ञतावश स्वकल्पित असंगत व्याख्याएँ एवं निष्कर्ष ३८१
२.३. गुणश्रेणिनिर्जरा-स्थानक्रम में आध्यात्मिक-विकासक्रम घटित नहीं होता ३८५
□ आध्यात्मिक विकास के कल्पित क्रम का निरसन ३८६
२.४. 'सम्यग्दृष्टि' आदि में गुणस्थान का लक्षण विद्यमान ३८९
२.५. सम्यग्दृष्टित्व आदि संवरादि के भी हेतु ३९२
२.६. उपशमक-क्षपक श्रेणियों का उल्लेख ३९२
२.७. समवायांग का प्रमाण ३९४

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

२.८. जीवतत्त्वप्रदीपिका का प्रमाण ३९४
२.९. चतुर्दश गुणस्थानों में ध्यानादि के स्वामित्व का कथन ३९५
२.१०. चौदह का एक साथ निर्देश अनावश्यक था ३९८
२.११. प्रतिपादनशैली से गुणस्थानसिद्धान्त के पूर्वभाव की पुष्टि ४०१
२.११.१.गुणस्थान-विवरण के बिना गुणस्थानाश्रित निरूपण ४०१
२.११.२.अन्तदीपकन्याय से अनुक्त गुणस्थानों का द्योतन ४०३
२.१२. तत्त्वार्थसूत्र का सम्पूर्ण प्रतिपादन गुणस्थान-केन्द्रित ४०५
२.१३. तत्त्वार्थसूत्र में गुणस्थान-केन्द्रित निरूपण सर्वमान्य ४०७
२.१४. तत्त्वार्थसूत्र में गुणस्थान-अवधारणा के सुदृढ़ प्रमाण ४०८
२.१५. तत्त्वार्थसूत्र की कर्मव्यवस्था से गुणस्थानव्यवस्था स्वतः सिद्ध ४०९
३. विकासवादविरोधी अनेक हेतु ४११
३.१. श्वेताम्बरागमों में गुणश्रेणिनिर्जरा का उल्लेख नहीं ४११
३.२. तत्त्वार्थसूत्र के गुणश्रेणिनिर्जरासूत्र का स्रोत षट्खण्डागम ४१२
३.३. भद्रबाहु-द्वितीय ही निर्युक्तियों के कर्त्ता ४१४
□ विरोधी तर्कों का निरसन ४१५
३.४. मोक्षमार्ग चतुर्दश गुणस्थानों का अविनाभावी ४१८
३.५. विकास का अर्थ : ऋषभादि में सम्यक्त्वादि की अनुत्पत्ति मानना ४१९
४. गुणस्थानसिद्धान्त का कपोलकल्पित विकासक्रम ४२०
५. डॉक्टर सा० के मत में किञ्चित् परिवर्तन ४२६
□ परिवर्तित मत का निरसन ४२९
□ पण्डित हीरालाल जी शास्त्री की भ्रान्ति ४३६
□ उपसंहार ४३९
६. सप्तभंगीविकासवाद ४४२
□ निरसन ४४२
६.१. भगवतीसूत्र में सातों भंगों की चर्चा ४४२
६.२. सप्तभंगी के विकास की परिस्थितियाँ महावीर के ही युग में ४४३
६.३. बादरायण व्यास द्वारा सप्तभंगी की आलोचना ४४६

६.४. 'स्यात्' निपात का प्रयोग बौद्धसाहित्य में भी ४५१

षष्ठ प्रकरण—प्रो. ढाकी के मत का निरसन ४५२

१. ८ वीं शती ई० से पूर्ववर्ती ग्रन्थों में कुन्दकुन्द का उल्लेख नहीं ४५३
□ निरसन : 'मूलाचार' आदि में कुन्दकुन्द की गाथाएँ ४५३
२. कुन्दकुन्दान्वय-लेखयुक्त मर्करा-ताम्रपत्र जाली ४५५
□ निरसन : पूर्णतः कृत्रिम नहीं, कुन्दकुन्दान्वय-उल्लेख प्राचीन ४५५
३. ८ वीं शती ई० के राजा शिवमार के लिए प्रवचनसार की रचना ४५५
□ निरसन : जयसेनाचार्य-वर्णित शिवकुमार राजा नहीं थे ४५६
४. ८वीं शती ई० के कुमारनन्दि-सिद्धान्तदेव कुन्दकुन्द के गुरु ४५८
□ निरसन : दानपत्र में न सिद्धान्तदेव का नाम है, न कुन्दकुन्द का ४५९
५. लिङ्गप्राभृतोक्त शिथिलाचार छठी शती ई० से परवर्ती ४६४
□ निरसन : उक्त शिथिलाचार अनादि से ४६४
६. छठी शती ई०-रचित षट्खण्डागम पर कुन्दकुन्द की टीका ४६५
□ निरसनः षट्खण्डागम ईसापूर्व प्रथमशती के पूर्वार्ध की रचना ४६५
७. कुन्दकुन्द द्वारा छठी शती ई० के 'मूलाचार' का अनुकरण ४६६
□ निरसन : 'मूलाचार' में कुन्दकुन्द की गाथाएँ ४६६
८. कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में छठी शती ई० के श्वेताम्बरग्रन्थों की गाथाएँ ४६६
□ निरसन : कुन्दकुन्द का स्थितिकाल ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी ४६७
९. कुन्दकुन्द द्वारा निश्चयनय का गहन-विस्तृत प्रयोग ४६७
□ निरसन : श्वेताम्बरमत में निश्चयनय के गहन-विस्तृत प्रयोग का अनवसर ४६८
१०. आत्मनिरूपण में ८वीं शती ई० के गौडपाद का अनुसरण ४७२
□ निरसन : कुन्दकुन्द द्वारा श्रुतकेवली के उपदेश का अनुसरण ४७३
११. 'स्वसमय', 'परसमय' शब्दों का नवीनार्थ में प्रयोग ४७७
□ निरसन : आत्मा के अर्थ में भी 'समय' शब्द का प्रयोग परम्परागत ४७७
१२. कुन्दकुन्द-प्रतिपादित 'शुद्धोपयोग' ८वीं शती ई० से पूर्व अज्ञात ४७९
□ निरसन : पूर्ववर्ती ग्रन्थों में भी शुद्धोपयोग का उल्लेख ४७९

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१३. कुन्दकुन्द साहित्य में स्याद्वाद-सप्तभंगी, तत्त्वार्थसूत्र में नहीं ४८२
□ निरसन : कुन्दकुन्दसाहित्य 'तत्त्वार्थ' के सूत्रों की रचना का आधार ४८२
१४. बहिरात्मादि भेद पूज्यपाद (७वीं शती ई०) से गृहीत ४८३
□ निरसन : श्रुतकेवली के उपदेश से गृहीत ४८३

सप्तम प्रकरण—डॉ० चन्द्र के अपभ्रंश-प्रयोग-हेतुवाद का निरसन ४८५

अष्टम प्रकरण—प्रो० हीरालाल जी जैन के मत का निरसन ४८९

१. प्रो० हीरालाल जी का मत ४८९
१.१. पहला लेख : '**शिवभूति और शिवार्य**'—
लेखक : प्रो० हीरालाल जी जैन ४९०
१.२. दूसरा लेख : '**जैन इतिहास का एक विलुप्त अध्याय**'—
लेखक : प्रो. हीरालाल जी जैन ४९७
२. निरसन ५०९
२.१. कल्पसूत्र के शिवभूति और बोटिक शिवभूति में एकत्व असंभव ५०९
२.२. शिवार्य आपवादिक सवस्त्रलिंग के विरोधी ५११
२.३. दिगम्बर-परम्परा ऐतिहासिक दृष्टि से पाँच हजार वर्ष प्राचीन ५११
२.४. भद्रबाहु-द्वितीय शिवभूति के शिष्य नहीं ५११
२.५. कुन्दकुन्द भी भद्रबाहु-द्वितीय के शिष्य नहीं ५१२
२.६. शिवार्य कुन्दकुन्द से परवर्ती ५१५
२.७. अनहोनी को होनी बनाने का अद्भुत कौशल ५१५
२.८. जैन इतिहास का मनगढ़न्त अध्याय ५१६
२.९. प्रथम लेख : '**शिवभूति, शिवार्य और शिवकुमार**'—
लेखक : पं० परमानंद जी जैन शास्त्री, सरसावा ५१७
२.१०. द्वितीय लेख : '**क्या निर्युक्तिकार भद्रबाहु और स्वामी समन्तभद्र एक हैं?**'—
लेखक : न्यायाचार्य पं० दरबारीलाल जी जैन कोठिया ५२१
२.१०.१.'स्वामी' उपाधि का प्रयोग पात्रकेसरी आदि के लिए भी ५२२
२.१०.२.निर्युक्तिकार भद्रबाहु और समन्तभद्र में सैद्धान्तिक मतभेद ५२४

२.१०.२.१. क्रमवाद और युगपद्वाद ५२४
२.१०.२.२. तीर्थंकरों की सवस्त्र प्रव्रज्या और निर्वस्त्र प्रव्रज्या ५२८
२.१०.२.३. आभूषणों से जिनेन्द्रपूजा का विधान एवं निषेध ५३१
२.१०.२.४. मुनि को कम्बलदान का विधान एवं निषेध ५३१
२.१०.२.५. केवली के द्वारा तीर्थंकर को प्रणाम का विधान एवं निषेध ५३२
२.१०.२.६. पार्श्वनाथ पर उपसर्ग अमान्य एवं मान्य ५३२
२.१०.३.कालभेद ५३४

नवम प्रकरण—अन्य विरुद्ध मतों का निरसन ५३७

१. ब्र० भूरामल जी का मत ५३७
□ निरसन ५३८
२. पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार का मत ५४०
□ निरसन ५४०
□ उपसंहार ५४०

एकादश अध्याय

षट्खण्डागम

प्रथम प्रकरण—यापनीयग्रन्थ मानने के पक्ष में प्रस्तुत हेतु ५४३

□ यापनीयपक्षधर ग्रन्थलेखक की अनिश्चयात्मक मनोदशा ५४४

द्वितीय प्रकरण— षट्खण्डागम का रचनाकाल : ई० पू० प्रथम शती का पूर्वार्ध ५५०

१. षट्खण्डागम की रचना कुन्दकुन्द से पूर्व ५५१
२. विक्रम की पाँचवीं शती के मत का निरसन ५५५
३. षट्खण्डागम के तत्त्वार्थसूत्र से प्राचीन होने के प्रमाण— ५५६

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३.१. तीर्थंकर-प्रकृति-बन्ध के सोलह कारण षट्खण्डागम से ५५७
३.२. गुणश्रेणीनिर्जरा के दस स्थान षट्खण्डागम से ५५७
३.३. तत्त्वार्थसूत्र के अनेक सूत्रों की रचना का आधार षट्खण्डागम ५५८
३.४. षट्खण्डागम के भावानुयोगद्वार का तत्त्वार्थसूत्र में संक्षेपीकरण ५६०
३.५. तत्त्वार्थसूत्र में गुणस्थान षट्खण्डागम से ५६१
३.६. षट्खण्डागम की अपेक्षा तत्त्वार्थसूत्र में नयविकास ५६१
३.७. षट्खण्डागम की अपेक्षा तत्त्वार्थसूत्र में प्रतिपादनशैली का विकास ५६१
४. षट्खण्डागम की रचना यापनीयसंघोत्पत्ति से बहुत पहले ५६२

तृतीय प्रकरण—यापनीयपक्षधर हेतुओं की असत्यता एवं हेत्वाभासता ५६३

१. दिगम्बरपट्टावली में नाम न होना दिगम्बर न होने का हेतु नहीं ५६३
२. दिगम्बरपट्टावलियों में धरसेन का नाम उपलब्ध भी है ५६४
३. नन्दिसंघ की प्राकृतपट्टावली यापनीयपट्टावली नहीं ५६५
४. नन्दिसंघ की प्राकृतपट्टावली सर्वथा अप्रामाणिक नहीं ५६६
५. धरसेन का एक अस्तित्वहीन संघ का आचार्य होना असंभव ५६७
६. जोणिपाहुड दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ ५६८
७. 'पण्णसवण' उपाधि का एक अस्तित्वहीन संघ से सम्बन्ध असंभव ५६९
८. शाब्दिक उलटफेर युक्ति-प्रमाणविरुद्ध ५७०
९. महाकर्मप्रकृतिप्राभृत के उत्तराधिकारी दिगम्बर और श्वेताम्बर ५७३
१०. समानगाथाएँ एकान्त-अचेलमुक्तिवादी मूलसंघ की सम्पत्ति ५७४
११. दिगम्बरग्रन्थों की गाथाएँ श्वेताम्बरग्रन्थों में ५७५
१२. संयतगुणस्थान की प्राप्ति भावस्त्री को ५७८

चतुर्थ प्रकरण— षट्खण्डागम के दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण : यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्तों की उपलब्धि ५८०

१. सत्प्ररूपणा का ९३वाँ सूत्र स्त्रीमुक्ति-निषेधक ५८१
२. षट्खण्डागम में गुणस्थानाश्रित बन्धमोक्षव्यवस्था ५८३

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३.	गुणस्थानसिद्धान्त सर्वज्ञोपदिष्ट, विकसित नहीं	५८६
४.	गुणस्थान-सिद्धान्त यापनीय-सिद्धान्तों के विरुद्ध—	५८८
	४.१. मिथ्यादृष्टि (परलिंगी) की मुक्ति के विरुद्ध	५८९
	४.१.१. जिनलिंग पूज्य, जिनलिंगाभास अपूज्य	५९८
	४.१.२. चतुर्जैनाभास-गृहीत नग्नवेश भी जिनलिंगाभास	६०१
	४.१.३. पार्श्वस्थादि भ्रष्ट जैनमुनियों का नाग्न्यलिंग कुलिंग	६०१
	४.१.४. जिनलिंगाभास केवलज्ञानसाधक नहीं	६०२
	४.२. गृहस्थमुक्ति के विरुद्ध	६०४
	४.३. स्त्री के तीर्थंकर होने के विरुद्ध	६०५
	४.४. लौकिक क्रियाएँ करते हुए केवलज्ञान-प्राप्ति के विरुद्ध	६१४
	४.४.१. मरुदेवी	६१४
	४.४.२. चन्दना-मृगावती	६१६
	४.४.३. बुहारी लगाने वाली वृद्धा	६१८
	४.४.४. गुरु को कन्धे पर बैठाकर ले जानेवाला शिष्य	६१८
	४.४.५. ढंढण ऋषि	६१८
	४.४.६. नट इलापुत्र	६१९
	४.४.७. कूर्मापुत्र	६२०
	४.५. सयोगकेवलि-गुणस्थान में मुक्ति के विरुद्ध	६२२
	४.६. शुभोपयोग के द्वारा केवलज्ञानप्राप्ति के विरुद्ध	६२३
	४.७. सावद्ययोग-परिणत जीव को केवलज्ञानप्राप्ति के विरुद्ध	६२३
५.	षट्खण्डागम में तीर्थंकर प्रकृतिबन्ध के सोलह कारण	६२४
६.	षट्खण्डागम में स्थविर (सवस्त्र) साधु अमान्य	६२६
७.	षट्खण्डागम में सोलह कल्प (स्वर्ग) मान्य	६२६
८.	षट्खण्डागम में नव अनुदिश मान्य	६२८
९.	षट्खण्डागम का भाववेदत्रय यापनीयों को अमान्य	६२९
१०.	षट्खण्डागम में यापनीय-अमान्य वेदवैषम्य की स्वीकृति	६३२
	१०.१. पुरुषादि-शरीररचना का हेतु पुरुषादि-अंगोपांग-नामकर्म	६३५
	१०.२. श्वेताम्बरग्रन्थों में भी वेदवैषम्य मान्य	६३७
	१०.३. श्वेताम्बरग्रन्थों में एक ही भव में उभयवेद-परिवर्तन भी मान्य	६४०

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१०.४. दिगम्बरग्रन्थों में वेदवैषम्याश्रित भावस्त्री-द्रव्यपुरुषवाचक 'मणुसिणी' या 'मानुषी' संज्ञा ६४१
१०.५. षट्खण्डागम में मणुसिणी को तीर्थंकरप्रकृति के बन्ध का कथन ६४९
१०.६. तीनों परम्पराओं में द्रव्यस्त्री के तीर्थंकर होने का निषेध ६४९
१०.७. षट्खंडागम में नपुंसकवेदी मनुष्य को तीर्थंकरप्रकृति के बन्ध का कथन ६५१
१०.८. तीनों परम्पराओं में द्रव्यनपुंसक की मुक्ति का निषेध ६५२
१०.९. श्वेताम्बर-साहित्य में दशविध जन्मजात, षड्विध कृत्रिम नपुंसक ६५३
१०.१०. षट्खण्डागम में स्त्रीवेदी मनुष्य को उत्कृष्ट देव-नारकायु के बन्ध का कथन ६५५
१०.११. तीनों परम्पराओं में द्रव्यस्त्री को उत्कृष्ट नारकायु के बन्ध का निषेध ६५६
१०.१२. तीनों परम्पराओं में द्रव्यस्त्री को उत्कृष्ट देवायु के बन्ध का निषेध ६५७

पंचम प्रकरण—यापनीयों की वेदवैषम्यविरोधी युक्तियों का निरसन ६६१

१. यापनीय-आचार्य शाकटायन की वेदवैषम्यविरोधी युक्तियाँ ६६१
२. शाकटायन की वेदवैषम्यविरोधी युक्तियों का निरसन ६६७

षष्ठ प्रकरण—'मणुसिणी' शब्द केवल द्रव्यस्त्रीवाचक : इस मत का निरसन ६७१

१. धवलाकार द्वारा 'मणुसिणी' शब्द का स्पष्टीकरण ६७३
२. न्यायसिद्धान्तशास्त्री पं० पन्नालाल जी सोनी का मत ६७६
३. पं० वंशीधर जी व्याकरणाचार्य का मत ६७८
४. भावनपुंसकत्व की स्वीकृति से भावस्त्रीत्व की पुष्टि ६८१
५. द्रव्यनपुंसक की मुक्ति तीनों परम्पराओं में अमान्य ६८३

सप्तम प्रकरण—'संजद' पद छोड़ा नहीं, जोड़ा गया है ६८५

१. 'संजद' पद होने के पक्ष में व्याकरणाचार्य जी का तर्क ६८७
२. 'संजद' पद होने के पक्ष में कोठिया जी का तर्क ६८९

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

- □ कोठिया जी का लेख : **'संजद पद के सम्बन्ध में अकलङ्कदेव का महत्त्वपूर्ण अभिमत'** ६८९
- □ कोठिया जी के मत में किंचित् संशोधन आवश्यक ६९३
- ३. 'संजद' पद होने के पक्ष में सोनी जी का तर्क ६९४

अष्टम प्रकरण—कर्मसिद्धान्त-व्यवस्था से वेदवैषम्य की सिद्धि ६९६

- १. प्रो० हीरालाल जी का वेदवैषम्य विरोधीमत ६९६
- २. प्रोफेसर सा० के वेदवैषम्य-विरोधी मत का निरसन ६९८
- □ उपसंहार : षट्खण्डागम के दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण सूत्ररूप में ७०४

नवम प्रकरण—डॉ० सागरमल जी के मत में परिवर्तन ७०६

- □ षट्खण्डागम दिगम्बरपरम्परा का ही ग्रन्थ ७०६
- □ साध्वी दर्शनकलाश्री जी के मतानुसार षट्खण्डागम दिगम्बरग्रन्थ ७०७

द्वादश अध्याय

कसायपाहुड

प्रथम प्रकरण—यापनीयग्रन्थ मानने के पक्ष में प्रस्तुत हेतु ७१३

- १. पहला मत और उसके पोषक हेतु ७१३
- २. दूसरा मत और उसके पोषक हेतु ७१४
- ३. दूसरे मत से पहले मत का निरसन ७१५
- ४. दूसरा मत कसायपाहुड के सम्प्रदाय का अनिर्णायक ७१६
- ५. निरन्तर बदलते हुए पूर्वापरविरोधी मत ७१६

द्वितीय प्रकरण—दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण ७२२

- १. अन्तरंग प्रमाण-यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्तों की उपलब्धि ७२२
  - १.१. वेदत्रय एवं वेदवैषम्य का प्रतिपादन ७२२
  - १.२. गुणस्थानसिद्धान्त की उपलब्धि ७२३
  - १.३. शौरसेनी प्राकृत में निबद्ध ७२५
- २. बहिरंग प्रमाण— ७२५
  - २.१. कसायपाहुड ईसापूर्व द्वितीय शती के उत्तरार्ध में रचित ७२६

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

२.२. अन्य बहिरंग तथ्य ७२८

तृतीय प्रकरण—प्रतिपक्षी हेतुओं की असत्यता एवं हेत्वाभासता ७३०

१. श्वेताम्बर-यापनीय स्थविरावलियों में गुणधर का नाम नहीं ७३०
२. श्वेताम्बर-यापनीय साहित्य में गुणधर का नाम अनुपलब्ध ७३१
३. 'गुणधर' के स्थान में 'गणधर' की कल्पना अप्रामाणिक ७३३
४. श्वेताम्बर आर्यमंगु-नागहस्ती का कसायपाहुड से सम्बन्ध असंभव ७३५
५. यतिवृषभ का नाम यापनीय-आचार्यों की नामावाली में नहीं ७४१
६. यतिवृषभ यापनीयमत-विरोधी 'तिलोयपण्णत्ती' के कर्त्ता ७४२
७. दिगम्बरमुनियों के भी नाम में 'यति' शब्द ७४३
८. अर्धमागधी प्रति के अभाव में शौरसेनीकरण असंभव ७४३
९. श्वेताम्बरपरम्परा में अर्धमागधी-कसायपाहुड का अभाव ७४४
१०. सित्तरीचूर्णि-निर्दिष्ट कसायपाहुड गुणधरकृत ७४७
११. कसायपाहुड पर श्वेताम्बरीय टीका नहीं ७५२
१२. स्त्रीमुक्ति-समर्थन का मत असत्य ७५३
१३. आचार्य-मतभेद परम्पराभेद का प्रमाण नहीं ७५६
१४. 'वाचक' पद का सम्बन्ध किसी परम्परा से नहीं ७५७
१५. मोहनीय के ५२ नाम एकान्त-अचेलमार्गी-मूलसंघ की विरासत ७५८
१६. अपना पूर्वमत स्वयं के द्वारा ही मिथ्या घोषित ७६०

चतुर्थ प्रकरण—कसायपाहुड श्वेताम्बरग्रन्थ नहीं ७६१

- **लेख—'कषायप्राभृत दिगम्बर आचार्यों की ही कृति है'—** लेखक : सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री ७६१
- **शब्दविशेष-सूची** ७८९
- **प्रयुक्त ग्रन्थों एवं शोधपत्रिकाओं की सूची** ८१७

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

श्रद्धेय बाबा सा० स्व० श्री रतनलाल जी पाटनी

(मेसर्स आर० के० मार्बल ग्रुप, मदनगंज-किशनगढ़)

दिगम्बर जैन समाज के नररत्न, बालब्रह्मचर्य के साथ शताधिकवर्षजीवी, देशव्रती बाबासाहब श्री रतनलाल जी पाटनी एवं उनके परिवारजनों ने धार्मिक एवं सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र में उत्कृष्ट कीर्तिमान स्थापित किए हैं। ये तीर्थक्षेत्रों के निर्माण एवं जीर्णोद्धार, यात्रीनिवास, पाठशाला, अस्पताल आदि के निर्माण तथा साहित्यप्रकाशन में पर्याप्त आर्थिक सहयोग प्रदान करने में सदैव अग्रणी रहे हैं। इस अतिमहत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रकाशन का पुण्यार्जन भी इन्हीं के यशस्वी परिवार के उदारमना श्री अशोककुमार जी पाटनी ने किया है। एतदर्थ उन्हें अनेक साधुवाद।

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)

फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

तीनों खण्डों की विषयवस्तु का परिचय

प्रस्तुत ग्रन्थ पृथक्-पृथक् ग्रथित तीन खण्डों में विभक्त है। अतः तीनों खण्डों की विषयवस्तु से एक साथ परिचित होने के लिए उसका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

प्रथम खण्ड की विषयवस्तु

प्रथम खण्ड में क्रमशः **प्रकाशकीय वक्तव्य, ग्रन्थकथा** (ग्रन्थ-लेखन का प्रसंग, प्रेरणा, अनुकूलताओं का अतिशय, सहयोगियों का सौहार्द, गुरुओं का आशीर्वाद, प्रोत्साहन, उनके द्वारा पाण्डुलिपि का श्रवण एवं परिमार्जन, तथा आवश्यक ग्रन्थों की व्यवस्था इत्यादि का विवरण), **ग्रन्थसार** (ग्रन्थ के सभी अध्यायों का सार) और **संकेताक्षर-विवरण** तथा **प्रथम अध्याय** से लेकर **सप्तम अध्याय** तक निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया गया है—

प्रथम अध्याय—इस अध्याय में श्वेताम्बर मुनियों एवं विद्वानों के उन कपोल-कल्पित मतों एवं कथाओं का वर्णन किया गया है, जिन्हें उन्होंने यह सिद्ध करने के लिए हेतु रूप में प्रस्तुत किया है कि दिगम्बरजैनमत तीर्थंकरोपदिष्ट एवं प्राचीन नहीं है, अपितु उसे वीरनिर्वाण सं० ६०९ (ई० सन् ८२) में गृहकलह के कारण श्वेताम्बर स्थविरकल्पी साधु बन जानेवाले बोटिक शिवभूति नाम के एक साधारण पुरुष ने चलाया था। कुछ आधुनिक श्वेताम्बर मुनियों एवं विद्वानों का कथन है कि दिगम्बरजैनमत का प्रवर्तन विक्रम की छठी शती में दक्षिण भारत में हुए आचार्य कुन्दकुन्द ने किया था। आधुनिक श्वेताम्बर मुनि श्री कल्याणविजय जी ने कथा गढ़ी है कि आचार्य कुन्दकुन्द पहले यापनीयसंघ में दीक्षित हुए थे, पश्चात् उससे अलग हो गये और उन्होंने दिगम्बरमत की स्थापना की। श्वेताम्बराचार्य श्री हस्तीमल जी ने यह कल्पना की है कि आचार्य कुन्दकुन्द पहले भट्टारकसम्प्रदाय में भट्टारकपद पर दीक्षित हुए थे, कुछ समय बाद उस सम्प्रदाय की प्रवृत्तियों से असन्तुष्ट होकर उन्होंने आगमोक्त दिगम्बरजैनमत को पुनरुज्जीवित किया। वर्तमान श्वेताम्बर विद्वान् डॉ० सागरमल जी द्वारा यह कहानी रची गयी है कि 'भगवान् महावीर ने अचेलकधर्म का उपदेश नहीं दिया था, अपितु अचेल-सचेल दोनों धर्मों का उपदेश दिया था। अतः उनका अनुयायी

श्रमणसंघ उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ के नाम से जाना जाता था। ईसा की पाँचवीं शती में इस संघ से केवल सचेलधर्म के समर्थक श्वेताम्बरसंघ का और सचेल-अचेल दोनों धर्मों के समर्थक यापनीयसंघ का जन्म हुआ।' ये तीनों संघ सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति, परतीर्थिकमुक्ति एवं केवलिभुक्ति को मानते थे। महावीर का गर्भपरिवर्तन भी इन तीनों को मान्य था। डॉ० सागरमल जी ने अपनी कहानी में यह भी गढ़ा है कि कुन्दकुन्द का श्रमणसंघ दक्षिणभारतीय-निर्ग्रन्थसंघ कहलाता था और उनका जन्म ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में नहीं, अपितु ईसोत्तर पाँचवीं (विक्रम की छठी) शताब्दी में हुआ था।

दिगम्बर विद्वान् पं० नाथूराम जी प्रेमी ने यह उद्भावना की है कि भगवती-आराधना, उसकी विजयोदयाटीका, मूलाचार और तत्त्वार्थसूत्र दिगम्बरग्रन्थ नहीं हैं, बल्कि यापनीयपरम्परा के ग्रन्थ हैं। दिगम्बर जैन विदुषी श्रीमती डॉ० कुसुम पटोरिया ने इन ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ और दिगम्बरग्रन्थों को भी यापनीय-परम्परा में रचित बतलाया है। इससे प्रेरणा पाकर श्वेताम्बर विद्वान् डॉ० सागरमल जी ने उक्त ग्रन्थों के साथ षट्खण्डागम, कसायपाहुड, तिलोयपण्णत्ती, वरांगचरित आदि सोलह दिगम्बर-ग्रन्थों को यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ घोषित कर दिया और तत्त्वार्थसूत्र तथा सन्मतिसूत्र को स्वकल्पित उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ के आचार्यों द्वारा रचित बतलाया है। उन्होंने अनेक कपोलकल्पित हेतुओं के द्वारा इसकी पुष्टि करने का प्रयत्न किया है।

द्वितीय अध्याय—उपर्युक्त मिथ्या मान्यताओं को सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किये गये कपोलकल्पित हेतुओं में से अनेक की कपोलकल्पितता का उद्घाटन द्वितीय अध्याय में किया गया है। इस अध्याय में सप्रमाण सिद्ध किया गया है कि—

१. वीरनिर्वाण सं० ६०९ (ई० सन् ८२) में बोटिक शिवभूति ने दिगम्बरमत की स्थापना नहीं की थी, अपितु श्वेताम्बरमत छोड़कर परम्परागत दिगम्बरमत का वरण किया था। शिवभूति की मान्यता थी कि श्रुत में अचेलत्व का ही उपदेश है और जिनेन्द्र-गृहीत होने से अचेललिंग ही प्रामाणिक है। यह शिवभूति के वचनानुसार दिगम्बर-मत के परम्परागत होने का प्रमाण है।

२. आचार्य कुन्दकुन्द को आधुनिक श्वेताम्बर मुनियों एवं विद्वानों ने ईसा की पाँचवीं शताब्दी (४७०-४९० ई०) के कदम्बवंशी राजा श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा का समकालीन एवं दिगम्बरमत का संस्थापक माना है। किन्तु इसी राजा के देवगिरि-ताम्रपत्रलेख में श्वेतपट-महाश्रमणसंघ के साथ उसके प्रतिपक्षी दिगम्बरजैनसंघ का निर्ग्रन्थमहाश्रमणसंघ के नाम से उल्लेख हुआ है, जिससे सिद्ध है कि दिगम्बरजैनमत

पाँचवीं शताब्दी ई० के पूर्व से चला आ रहा था। इसके अतिरिक्त पाँचवीं शती ई० (४५० ई०) के पूज्यपादस्वामी ने सर्वार्थसिद्धि में दिगम्बरजैनमत का प्रतिपादन किया है। यह भी इस बात का प्रमाण है कि दिगम्बर जैनमत इसके बहुत पहले से प्रचलित था। अतः यह मान्यता मिथ्या सिद्ध हो जाती है कि आचार्य कुन्दकुन्द ने दिगम्बरमत की स्थापना की थी।

३. उपर्युक्त देवगिरि-ताम्रपत्रलेख से सिद्ध है कि ईसा की पाँचवी शताब्दी तक **निर्ग्रन्थ** शब्द दिगम्बरजैन मुनियों के लिए लोकप्रसिद्ध था। और ईसापूर्व तीसरी शताब्दी के अशोक के सातवें स्तम्भलेख में निर्ग्रन्थों का उल्लेख हुआ है। यह इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि दिगम्बरजैनसंघ ईसापूर्व तृतीय शताब्दी में विद्यमान था। ईसापूर्व छठी शताब्दी के बुद्धवचनों के संग्रहरूप प्राचीन पिटकसाहित्य में तथा ईसा की प्रथम शताब्दी से लेकर चतुर्थ शताब्दी तक के बौद्धसाहित्य में दिगम्बरजैन मुनियों को **निर्ग्रन्थ** शब्द से अभिहित किया गया है। इन प्रमाणों से भी श्वेताम्बर विद्वानों की यह मान्यता कपोलकल्पित सिद्ध हो जाती है कि आचार्य कुन्दकुन्द ने दिगम्बरजैनमत का प्रवर्तन किया था।

४. श्वेताम्बरसंघ की उत्पत्ति के पूर्व निर्ग्रन्थसंघ के सभी साधु अचेल (नग्न) होते थे, अतः **निर्ग्रन्थ** शब्द **जैनसाधु** का पर्यायवाची बन गया था। इसलिए जब निर्ग्रन्थ-संघ के कुछ साधुओं ने वस्त्रपात्र धारण कर श्वेताम्बरसंघ बना लिया, तब भी उन्होंने जैनसाधु के रूप में अपनी पहचान कराने हेतु अपने लिए 'निर्ग्रन्थ' शब्द का प्रयोग प्रचलित रखा। किन्तु यह प्रयोग उनके शास्त्रों तक ही सीमित रहा। इस नाम से वे अपने संघ को प्रसिद्ध नहीं कर सके, क्योंकि यह पहले से ही अचेल (दिगम्बर) जैनश्रमणसंघ के लिए प्रसिद्ध था और यह (निर्ग्रन्थ) शब्द श्वेताम्बरों की साम्प्रदायिक विशिष्टता के विज्ञापन में भी बाधक था। इसलिए उन्होंने अपने संघ को **श्वेतपटसंघ** नाम से प्रसिद्ध किया। ईसापूर्व प्रथम शती के बौद्धग्रन्थ **अपदान** में श्वेताम्बरों को **सेतवत्थ (श्वेतवस्त्र)** नाम से अभिहित किया गया है और पाँचवीं शताब्दी ई० के देवगिरि-ताम्रपत्रलेख में उनके संघ का उल्लेख **श्वेतपटमहाश्रमणसंघ** शब्द से हुआ है। इससे सिद्ध है कि श्वेताम्बरसंघ आरंभ से ही 'श्वेतपट' नाम से प्रसिद्ध रहा है। और 'निर्ग्रन्थ' शब्द उनके शास्त्रों में भी मिलता है। इससे सिद्ध होता है निर्ग्रन्थसंघ (दिगम्बरसंघ) श्वेताम्बरसंघ से प्राचीन है।

५. **यापनीयसंघ** का सर्वप्रथम उल्लेख पाँचवीं शती ई० (सन् ४७०-४९० ई०) के कदम्बवंशीय राजा मृगेशवर्मा के हल्सी-ताम्रपत्रलेख में उपलब्ध होता है। इससे

पूर्व किसी भी शिलालेख या ग्रन्थ में उसका उल्लेख नहीं मिलता। इससे सिद्ध होता है कि यापनीयसंघ की उत्पत्ति उक्त ताम्रपत्रलेख के काल से अधिक से अधिक पचास वर्ष पूर्व अर्थात् ईसा की पाँचवीं शताब्दी के प्रथम चरण में हुई थी। डॉ० सागरमल जी ने भी यही माना है। दूसरी ओर आचार्य कुन्दकुन्द का अस्तित्वकाल ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर ईसोत्तर प्रथम शताब्दी के पूर्वार्ध तक था। इसका सप्रमाण प्रतिपादन **कुन्दकुन्द का समय** नामक दशम अध्याय में किया गया है। अत: जिस यापनीयसंघ का उदय कुन्दकुन्द के अस्तित्वकाल से पाँच सौ वर्ष बाद हुआ, उसमें उनका दीक्षित होना सर्वथा असंभव है।

६. इसी प्रकार भट्टारकसम्प्रदाय का उदय ईसा की १२वीं शताब्दी में हुआ था। इसकी सप्रमाण सिद्धि अष्टम अध्याय में की गयी है। अत: इससे ११०० वर्ष पूर्व हुए कुन्दकुन्द का भट्टारकसम्प्रदाय में भी दीक्षित होना असंभव है।

७. ईसा की पाँचवीं शताब्दी में उत्पन्न हुए यापनीयसंघ से पूर्व भारत में ऐसा कोई भी जैनसम्प्रदाय नहीं था जो अचेल और सचेल दोनों लिंगों से मुक्ति मानता हो। पाँचवीं शताब्दी ई० तथा उससे पूर्व के किसी भी अभिलेख या ग्रन्थ में ऐसे सम्प्रदाय का उल्लेख नहीं मिलता। इसका सप्रमाण प्रतिपादन द्वितीय अध्याय में किया गया है। अत: डॉ० सागरमल जी की यह मान्यता अप्रमाणिक सिद्ध हो जाती है कि उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसम्प्रदाय से श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदायों का जन्म हुआ था और तत्त्वार्थसूत्र एवं सन्मतिसूत्र की रचना इसी सम्प्रदाय में हुई थी।

तृतीय अध्याय—इस अध्याय में वे प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि श्वेताम्बरसाहित्य में दिगम्बरमत को मान्यता दी गयी है। आचारांग और स्थानांग में अचेलत्व की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है। परीषहजय एवं तप के लिए पूर्ण निर्वस्त्रता की अनुशंसा की गयी है। द्रव्य-परिग्रह को भी परिग्रह स्वीकार किया गया है। सभी तीर्थंकरों के दिगम्बरमुद्रा से ही मुक्त होने का कथन है। आदि और अन्तिम तीर्थंकरों द्वारा अचेलकधर्म का ही उपेदश दिये जाने का वर्णन है। और आचारांग में 'अचेल' का अर्थ 'अल्पचेल' नहीं किया गया है, सर्वथा अचेल ही किया गया है। इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि दिगम्बरमत आचारांग और स्थानांग के रचनाकाल से भी प्राचीन है।

चतुर्थ अध्याय—वैदिकसाहित्य, संस्कृतसाहित्य और बौद्धसाहित्य में भी दिगम्बर-जैन मुनियों की चर्चा की गई है। इसके प्रमाण चतुर्थ अध्याय में दिये गये हैं। ईसापूर्व १५वीं शती के **ऋग्वेद** में **वातरशन** (वायुरूपी वस्त्र धारण करनेवाले) मुनियों का

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उल्लेख है। ईसापूर्व ८०० के महर्षि यास्करचित **निघण्टु** में **दिगम्बर** एवं **वातवसन** (वायुरूपी वस्त्रधारी) मुनियों की चर्चा की गयी है। ५०० ई० पू० से १०० ई० पू० तक रचित **महाभारत** में **नग्नक्षपणक** शब्द से दिगम्बरजैन साधुओं का कथन हुआ है। ३०० ई० के **पञ्चतन्त्र** (अपरीक्षितकारक) में **नग्नक, क्षपणक** और **दिगम्बर** शब्दों से तथा **धर्मवृद्धि** के आशीर्वाद के उल्लेख से दिगम्बरजैन मुनियों का वर्णन किया गया है। **मत्स्यपुराण** (३०० ई०), **विष्णुपुराण** (३००-४०० ई०) **मुद्राराक्षस** नाटक (४००-५०० ई०) **वायुपुराण** (५०० ई०) तथा **वराहमिहिर-बृहत्संहिता** (४९० ई०) में दिगम्बर-जैन मुनियों के लिए **नग्न, निर्ग्रन्थ, दिग्वासस्** और **क्षपणक** शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

बौद्ध पिटकसाहित्य में ईसापूर्व छठी शती के बुद्धवचनों का संकलन है, जो ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में लिपिबद्ध हो चुका था। उसके अन्तर्गत सुत्तपिटक के **अंगुतर-निकाय** में निर्ग्रन्थों को अहिरिका (अह्रीक = निर्लज्ज) कहा गया है, जिससे उनका नग्न रहना सूचित होता है। अंगुत्तरनिकाय में ही इन्हें **अचेल** शब्द से भी अभिहित किया गया है। प्रथम शती ई० के बौद्धग्रन्थ **दिव्यावदान** में निर्ग्रन्थों को नग्न विचरण करनेवाला कहा गया है। धम्मपद-अट्ठकथा (४-५वीं शती ई०) की **विसाखावत्थु** कथा में भी निर्ग्रन्थों को **नग्नवेशधारी** ही बतलाया गया है तथा आर्यशूर (चौथी शती ई०) ने संस्कृत में रचित **जातकमाला** में निर्ग्रन्थों को वस्त्रधारण करने के कष्ट से मुक्त कहा है।

इन जैनेतर साहित्यिक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि दिगम्बरजैनमत ऋग्वेद के रचनाकाल (ई० पू० १५००) से भी प्राचीन है। अतः उसे वीर निर्वाण सं० ६०९ (ई० सन् ८२) में बोटिक शिवभूति के द्वारा अथवा विक्रम की छठी शती में आचार्य कुन्दकुन्द के द्वारा प्रवर्तित बतलाया जाना एक बहुत बड़ा झूठ है।

पञ्चम अध्याय—इस अध्याय में पुरातत्त्व के प्रमाणों के आधार पर दिगम्बर-जैनमत की प्राचीनता सिद्ध की गई है। हड़प्पा की खुदाई में ई० पू० २४०० वर्ष पुरानी एक मस्तकविहीन नग्न जिनप्रतिमा प्राप्त हुई है। ठीक वैसी ही एक मौर्यकालीन (ई० पू० तृतीय शताब्दी की) नग्न जिनप्रतिमा लोहानीपुर (पटना, बिहार) में उपलब्ध हुई है। ये प्राचीन नग्न जिनप्रतिमाएँ इस बात का सबूत हैं कि दिगम्बरजैन-परम्परा ईसापूर्व ३०० वर्ष से पुरानी तो है ही, ईसापूर्व २४०० वर्ष से भी प्राचीन है। श्वेताम्बरसम्प्रदाय में नग्न जिनप्रतिमाओं का निर्माण कभी नहीं हुआ, क्योंकि श्वेताम्बर नग्नत्व को अश्लील एवं लोकमर्यादा के विरुद्ध मानते हैं, इसलिए उन्होंने यह कल्पना की है कि तीर्थंकरों का नग्न शरीर दिव्य शुभप्रभामंडल से आच्छादित हो जाता है, फलस्वरूप वे नग्न दिखाई नहीं देते।

षष्ठ अध्याय—दिगम्बर-श्वेताम्बर-भेद का इतिहास इस अध्याय का विषय है। प्रायः सभी दिगम्बरजैनों की यह धारणा है कि दिगम्बर-श्वेताम्बर-भेद ईसापूर्व चौथी शताब्दी में श्रुतकेवली भद्रबाहु के समय में द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष के फलस्वरूप हुआ था। किन्तु यह धारणा संशोधनीय है। श्रुतकेवली भद्रबाहु के समय में दिगम्बर-श्वेताम्बर-भेद नहीं हुआ था, अपितु **दिगम्बर-अर्धफालक-भेद** हुआ था। **दिगम्बर-श्वेताम्बर-भेद** तो जम्बूस्वामी के निर्वाण (वीर नि० सं० ६२=४६५ ई० पू०) के पश्चात् ही हो गया था। इसका प्रमाण यह है कि उनके निर्वाण के पश्चात् ही दोनों सम्प्रदायों की गुरुशिष्य-परम्परा अलग-अलग हो गयी थी। निर्ग्रन्थसंघ से पहली बार तो **श्वेताम्बर-संघ** की उत्पत्ति शीतादिपरीषहों की पीड़ा सहने में असमर्थ साधुओं के अचेलत्व को छोड़कर वस्त्रपात्र-कम्बल आदि ग्रहण कर लेने से हुई थी, किन्तु दूसरी बार उससे (निर्ग्रन्थसंघ से) **अर्धफालकसंघ** का जन्म द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष के कारण आहारप्राप्ति में उत्पन्न कठिनाइयों के फलस्वरूप हुआ था। अर्धफालक साधु नग्न रहते थे, किन्तु बायें हाथ पर सामने की ओर आधा वस्त्र लटकाकर गुह्यांग छिपाते थे। इस कारण वे **अर्धफालक** नाम से प्रसिद्ध हुए।

सप्तम अध्याय—प्रस्तुत अध्याय में यापनीयसंघ की उत्पत्ति के स्रोत एवं काल का अनुसन्धान किया गया है। निर्ग्रन्थसंघ (दिगम्बरसंघ) का प्राचीनतम उल्लेख बौद्धों के पिटकसाहित्य (अंगुत्तरनिकाय) एवं अशोक के सप्तम स्तम्भलेख में मिलता है। तथा श्वेतपटसंघ की चर्चा ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के बौद्धग्रन्थ **अपदान** में उपलब्ध होती है। किन्तु यापनीयसंघ का उल्लेख सर्वप्रथम कदम्बवंशी राजा मृगेशवर्मा के हल्सी-ताम्रपत्रलेख (४७०-४९० ई०) में हुआ है। इससे पूर्व किसी भी अभिलेख या ग्रन्थ में यापनीयसंघ का नाम नहीं मिलता। इससे निर्णीत होता है कि यापनीयसंघ का उदय उक्त उल्लेख से लगभग ५० वर्ष पूर्व अर्थात् ईसा की पाँचवीं शताब्दी के प्रारंभ में हुआ था। डॉ० सागरमल जी ने भी यही माना है। इस संघ का उल्लेख करनेवाले प्रायः सभी शिलालेख एवं इस संघ के बनवाये हुए मंदिर दक्षिण भारत में ही प्राप्त हुए हैं, जो इस बात के प्रमाण हैं कि यापनीयसंघ की उत्पत्ति दक्षिण भारत में हुई थी। इस संघ के साधु प्रायः दिगम्बर-साधुओं के समान नग्न रहते थे, मयूरपिच्छी रखते थे और पाणितलभोजी होते थे, तथापि शीतादिपरीषह सहने में असमर्थ अथवा नग्न रहने में लज्जा का अनुभव करनेवाले या जिनका पुरुषचिह्न विकृत होता था, उन साधुओं के लिए इस संघ में श्वेताम्बरों के समान वस्त्रपात्रादि रखने की अनुमति दी गयी थी। इस प्रकार दिगम्बरों के समान नग्नत्व को छोड़कर इसकी सभी मान्यताएँ श्वेताम्बरीय मान्यताओं के समान थीं। अर्थात् यापनीय भी श्वेताम्बरों के समान सवस्त्रमुक्ति,

स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति, परतीर्थिकमुक्ति, केवलिभुक्ति एवं महावीर के गर्भपरिवर्तन की बात मानते थे। वे श्वेताम्बर-आगमों को भी मानते थे। इस अत्यन्त समानता से सिद्ध होता है कि यापनीयसंघ की उत्पत्ति श्वेताम्बरसंघ से हुई थी।

इस अध्याय में उन विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया है, जो यापीनयग्रन्थ के असाधारणधर्म या लक्षण हैं, जिनके सद्भाव या अभाव से यह निर्णय होता है कि अमुक ग्रन्थ यापनीयग्रन्थ है या नहीं।

सप्तम अध्याय के अन्त में क्रमशः शब्दविशेष-सूची एवं प्रयुक्त ग्रन्थों की सूची विन्यस्त की गयी हैं।

द्वितीय खण्ड की विषयवस्तु

इस खण्ड में आठवें अध्याय से लेकर बारहवें अध्याय तक कुल पाँच अध्याय निबद्ध किये गये हैं।

अष्टम अध्याय—आचार्य कुन्दकुन्द ने किसी भी ग्रन्थ में अपने दीक्षागुरु के नाम का उल्लेख नहीं किया। श्वेताम्बर मुनि श्री कल्याणविजय जी ने इसका कारण यह बतलाया है कि कुन्दकुन्द शुरू में बोटिक शिवभूति द्वारा प्रवर्तित यापनीयसंघ में उसकी परम्परा के किसी शिष्य द्वारा दीक्षित हुए थे। किन्तु आगे चलकर उन्हें अपने गुरु का शिथिलाचार तथा यापनीयमत की अयुक्तिसंगत मान्यताएँ पसन्द नहीं आयीं, इसलिए वे उनके विरुद्ध हो गये। अन्ततः उन्होंने अपने गुरु का साथ छोड़ दिया और पृथक् दिगम्बरसंघ स्थापित कर लिया। इसीलिए उन्होंने अपने गुरु के नाम का उल्लेख नहीं किया।

श्वेताम्बराचार्य श्री हस्तीमल जी का कथन है कि कुन्दकुन्द प्रारम्भ में मन्दिर मठों में नियतवास करनेवाले और राजाओं से भूमिदान आदि ग्रहण करनेवाले भट्टारक-सम्प्रदाय के भट्टारक थे। किन्तु, जब उन्हें धर्म के तीर्थंकरप्रणीत वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हुआ, तब उनके मन में अपने भट्टारक गुरु के प्रति अश्रद्धा हो गयी और वे उनसे अलग हो गये। इसी कारण उन्होंने अपने ग्रन्थों में उनके नाम का स्मरण नहीं किया। आचार्य हस्तीमल जी ने कुन्दकुन्द का अस्तित्वकाल वीर नि० सं० १००० अर्थात् ४७३ ई० के लगभग माना है और उस समय जो दिगम्बरजैन मुनि मन्दिर-मठ में नियतवास करते थे और राजाओं से ग्राम-भूमि आदि का दान ग्रहण कर गृहस्थों जैसा जीवन व्यतीत करते थे, उनके सम्प्रदाय को भी भट्टारकसम्प्रदाय घोषित किया है।

प्रस्तुत अध्याय में इन दोनों मतों को निम्नलिखित प्रमाणों के आधार पर कपोलकल्पित सिद्ध किया गया है—

१. विशेषावश्यकभाष्य में वर्णित बोटिकमतोत्पत्ति कथा से सिद्ध है कि बोटिक शिवभूति यापनीयसंघ का प्रवर्तक नहीं था, अपितु उसने श्वेताम्बरमत छोड़कर परम्परागत दिगम्बरमत का वरण किया था, अतः उसकी परम्परा में दीक्षित कोई भी व्यक्ति यापनीय नहीं हो सकता था। शिवभूति के दिगम्बर होने पर भी कुन्दकुन्द उसके शिष्य या प्रशिष्य नहीं हो सकते थे, क्योंकि कुन्दकुन्द ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी (ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध और ईसोत्तर प्रथम शताब्दी के पूर्वार्ध) में हुए थे। (देखिये, अध्याय १०) और बोटिक शिवभूति ने ईसोत्तर प्रथम शताब्दी के अन्तिम चरण (वीर निर्वाण सं० ६०९=ई० सन् ८२) में दिगम्बरमत स्वीकार किया था।

२. कुन्दकुन्द के प्रथमतः यापनीय होने का उल्लेख न तो कुन्दकुन्द ने स्वयं अपने किसी ग्रन्थ में किया है, न किसी अन्य ग्रन्थ या शिलालेख में मिलता है।

३. आचार्य कुन्दकुन्द ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी में हुए थे और यापनीयसंघ की उत्पत्ति ईसा की पाँचवीं शताब्दी के प्रारंभ में हुई थी। (देखिये, अध्याय ७)। इससे भी कुन्दकुन्द का यापनीयसंघ में दीक्षित होना असंभव था।

४. इसी प्रकार भगवान् महावीर द्वारा अनुपदिष्ट सवस्त्र-साधुलिंग को धारण-करनेवाले भट्टारक सम्प्रदाय का उदय ईसा की १२वीं शताब्दी में हुआ था, अतः ग्यारह सौ वर्ष पूर्व हुए आचार्य कुन्दकुन्द का भट्टारकसम्प्रदाय में भी दीक्षित होना नामुमकिन है।

५. १२वीं शताब्दी के पूर्व जिन दिगम्बरजैन साधुओं ने मन्दिरों और मठों में नियतवास आरंभ कर दिया था और भूमि-ग्रामादि का दान ग्रहण करने लगे थे, उनका सम्प्रदाय पासत्थादि-मुनिसम्प्रदाय कहलाता था, भट्टारक-सम्प्रदाय नहीं। पासत्थादि-मुनिसम्प्रदाय और भट्टारकसम्प्रदाय में मौलिक भेद यह था कि पहले ने मुनि अवस्था में रहते हुए गृहस्थकर्म अपना लिया था और दूसरे ने गृहस्थावस्था में रहते हुए मुनिकर्म (धर्मगुरु का पद) हथिया लिया था। इस प्रकारक कुन्दकुन्द के समय में पासत्थादि-मुनियों के सम्प्रदाय का अस्तित्व था, भट्टारकसम्प्रदाय का नहीं। अतः कुन्दकुन्द का भट्टारकसम्प्रदाय में भी दीक्षित होना असंभव था।

यह सुनिश्चित करने के लिए कि भट्टारकसम्प्रदाय का उदय ईसा की १२वीं शती में ही हुआ था, उसके पूर्व नहीं, प्रस्तुत अध्याय में भट्टारकों के असाधारणधर्मों

का विस्तार से वर्णन किया गया है और उन धर्मों का विकास १२वीं शती में ही हुआ था, इसे सिद्ध करने के लिए अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं।

इसी प्रकार इस तथ्य पर भी प्रकाश डाला गया है कि मन्दिर-मठों में नियतवास करनेवाले और राजाओं से ग्राम-भूमि आदि का दान लेकर गृहस्थों जैसा जीवन व्यतीत करनेवाले दिगम्बर जैन मुनियों के लिए 'भट्टारक' संज्ञा का प्रयोग किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में नहीं मिलता उन्हें सर्वत्र पासत्थ (पार्श्वस्थ), कुसील (कुशील), संसत्त (संसक्त) और ओसण्ण (अवसन्न), इन विशेषणों से युक्त 'मुनि' शब्द से ही अभिहित किया गया है।

निष्कर्ष यह कि आचार्य कुन्दकुन्द, न तो कभी यापनीयसम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे, न भट्टारकसम्प्रदाय में, अतः मुनि कल्याणविजय जी और आचार्य हस्तीमल जी ने कुन्दकुन्द के द्वारा अपने दीक्षागुरु के नाम का उल्लेख न किये जाने के जो कारण बतलाये हैं, वे सर्वथा मिथ्या हैं।

श्वेताम्बराचार्य हस्तीमल जी ने सुप्रसिद्ध दिगम्बरग्रन्थ **गोम्मटसार** के कर्त्ता **नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती** को भी यापनीयसम्प्रदाय का आचार्य बतलाया है। इसका भी सप्रमाण खण्डन प्रस्तुत अध्याय का एक प्रासंगिक विषय है।

नवम अध्याय–प्रस्तुत अध्याय में इस प्रश्न का समाधान किया गया है कि आचार्य कुन्दकुन्द ने स्वरचित ग्रन्थों में अपने दीक्षागुरु के नाम का उल्लेख क्यों नहीं किया? वह समाधान यह है कि प्राचीनकाल में प्रायः ग्रन्थकारों के द्वारा अपने ग्रन्थों में स्वयं के तथा स्वगुरु के नाम का उल्लेख करने की परम्परा नहीं थी। षट्खण्डागम के कर्त्ता पुष्पदन्त और भूतबलि, कसायपाहुड के कर्त्ता गुणधर, तत्त्वार्थसूत्रकार गृध्रपिच्छ, आचार्य समन्तभद्र, पूज्यपादस्वामी आदि दिगम्बराचार्यों ने भी अपने ग्रन्थों में स्वनाम एवं स्वगुरु के नाम का उल्लेख नहीं किया। इसी प्रकार पाणिनि ने अष्टाध्यायी में, पतञ्जलि ने योगदर्शन में और वाल्मीकि ने रामायण में अपने गुरु के नाम का निर्देश नहीं किया।

दशम अध्याय–आचार्य कुन्दकुन्द के समय के विषय में अनेक विप्रतिपत्तियाँ हैं। डॉ० के० बी० पाठक, मुनि कल्याणविजय जी, पं० दलसुख मालणिया, डॉ० आर० के० चन्द्र एवं डॉ० सागरमल जी ने कुन्दकुन्द का अस्तित्वकाल विक्रम की छठी शती (५वीं शती ई० का उत्तरार्ध) माना है। प्रो० एम० ए० ढाकी ने तो कुन्दकुन्द को आठवीं शती ई० में ढकेलने का प्रयत्न किया है। श्वेताम्बराचार्य हस्तीमल जी ने उन्हें पहले ई० सन् ४७३ में उत्पन्न बतलाया, बाद में उनका उत्पत्तिकाल ई०

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

सन् ७१३ मान लिया। प्रो० हीरालाल जी जैन ने कुन्दकुन्द का समय ईसा की द्वितीय शताब्दी बतलाया है, जब कि ब्र० भूरामल जी (आचार्य श्री ज्ञानसागर जी) ने उन्हें श्रुतकेवली भद्रबाहु का तथा पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने भद्रबाहु-द्वितीय का साक्षात् शिष्य मानकर उनका समकालीन माना है। ये सभी मत असमीचीन हैं।

ई० सन् १८८५ में राजपूताना की यात्रा के समय श्री सेसिल बेण्डल (Mr. Cecil Bendall) को जयपुर के पण्डित श्री चिमनलाल जी ने मूलसंघ, सरस्वतीगच्छ, नन्दी-आम्नाय और बलात्कारगण की दो पट्टावलियाँ प्रदान की थीं। श्री बेण्डल ने वे प्रो० (डॉ०) ए० एफ० रूडाल्फ हॉर्नले (Rudolf Hoernle) को सौंप दीं। प्रो० हार्नले ने उन पट्टावलियों का समस्त विवरण अँगरेजी में एक तालिका में निबद्ध किया और उसे तत्कालीन शोधपत्रिका 'The Indian Antiquary, Vol. XX, october 1891' में प्रकाशित कराया। इस (इण्डियन ऐण्टिक्वेटी में प्रकाशित) तालिकाबद्ध पट्टावली में बतलाया गया है कि कुन्दकुन्द का जन्म ईसा से ५२ वर्ष पूर्व हुआ था और ईसा से ८ वर्ष पहले ४४ वर्ष की आयु में वे आचार्यपद पर प्रतिष्ठित हुए थे तथा ५१ वर्ष, १० मास एवं १० दिन तक आचार्यपद पर आसीन रहे। उसके ५ दिन बाद स्वर्ग सिधार गये। इस प्रकार उनका जीवनकाल ९५ वर्ष, १० मास और १५ दिन था।

आचार्य कुन्दकुन्द के इस समय की पुष्टि साहित्यिक और शिलालेखीय प्रमाणों से होती है। दशम अध्याय में इन्हीं प्रमाणों को प्रस्तुत कर आचार्य कुन्दकुन्द का अस्तित्वकाल ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी (ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर ईसोत्तर प्रथम शताब्दी के पूर्वार्ध तक) निर्धारित किया गया है और उपर्युक्त विद्वानों द्वारा प्रस्तुत समस्त विरोधी मतों को उनके आधारभूत हेत्वाभासों का युक्ति-प्रमाणपूर्वक विस्तार से निरसन करते हुए निरस्त किया गया है।

श्वेताम्बर विद्वान् पं० दलसुख मालवणिया ने कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में वर्णित जैनदर्शन के स्वरूप को तत्त्वार्थसूत्र (उनके अनुसार तीसरी-चौथी शताब्दी ई०) में वर्णित जैनदर्शन के स्वरूप की अपेक्षा विकसित मानकर कुन्दकुन्द को उमास्वाति से परवर्ती (पाँचवीं शती ई०) सिद्ध करने का प्रयास किया है। इसी प्रकार डॉ० सागरमल जी ने गुणस्थानसिद्धान्त और नय-प्रमाण-सप्तभंगी को जिनोपदिष्ट न मानकर छद्मस्थ आचार्यों द्वारा विकसित बतलाया है और कहा है कि तत्त्वार्थसूत्र में ये दोनों सिद्धान्त उपलब्ध नहीं होते, जब कि कुन्दकुन्दसाहित्य में उपलब्ध होते हैं, अतः कुन्दकुन्द उमास्वाति से उत्तरवर्ती (५वीं शती ई० के) हैं। दशम अध्याय में इन तीनों विकासवादों

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

सन् ७१३ मान लिया। प्रो० हीरालाल जी जैन ने कुन्दकुन्द का समय ईसा की द्वितीय शताब्दी बतलाया है, जब कि ब्र० भूरामल जी (आचार्य श्री ज्ञानसागर जी) ने उन्हें श्रुतकेवली भद्रबाहु का तथा पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने भद्रबाहु-द्वितीय का साक्षात् शिष्य मानकर उनका समकालीन माना है। ये सभी मत असमीचीन हैं।

ई० सन् १८८५ में राजपूताना की यात्रा के समय श्री सेसिल बेण्डल (Mr. Cecil Bendall) को जयपुर के पण्डित श्री चिमनलाल जी ने मूलसंघ, सरस्वतीगच्छ, नन्दी-आम्नाय और बलात्कारगण की दो पट्टावलियाँ प्रदान की थीं। श्री बेण्डल ने वे प्रो० (डॉ०) ए० एफ० रूडाल्फ हॉर्नले (Rudolf Hoernle) को सौंप दीं। प्रो० हार्नले ने उन पट्टावलियों का समस्त विवरण अँगरेजी में एक तालिका में निबद्ध किया और उसे तत्कालीन शोधपत्रिका 'The Indian Antiquary, Vol. XX, october 1891' में प्रकाशित कराया। इस (इण्डियन ऐण्टिक्वेटी में प्रकाशित) तालिकाबद्ध पट्टावली में बतलाया गया है कि कुन्दकुन्द का जन्म ईसा से ५२ वर्ष पूर्व हुआ था और ईसा से ८ वर्ष पहले ४४ वर्ष की आयु में वे आचार्यपद पर प्रतिष्ठित हुए थे तथा ५१ वर्ष, १० मास एवं १० दिन तक आचार्यपद पर आसीन रहे। उसके ५ दिन बाद स्वर्ग सिधार गये। इस प्रकार उनका जीवनकाल ९५ वर्ष, १० मास और १५ दिन था।

आचार्य कुन्दकुन्द के इस समय की पुष्टि साहित्यिक और शिलालेखीय प्रमाणों से होती है। दशम अध्याय में इन्हीं प्रमाणों को प्रस्तुत कर आचार्य कुन्दकुन्द का अस्तित्वकाल ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी (ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर ईसोत्तर प्रथम शताब्दी के पूर्वार्ध तक) निर्धारित किया गया है और उपर्युक्त विद्वानों द्वारा प्रस्तुत समस्त विरोधी मतों को उनके आधारभूत हेत्वाभासों का युक्ति-प्रमाणपूर्वक विस्तार से निरसन करते हुए निरस्त किया गया है।

श्वेताम्बर विद्वान् पं० दलसुख मालवणिया ने कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में वर्णित जैनदर्शन के स्वरूप को तत्त्वार्थसूत्र (उनके अनुसार तीसरी-चौथी शताब्दी ई०) में वर्णित जैनदर्शन के स्वरूप की अपेक्षा विकसित मानकर कुन्दकुन्द को उमास्वाति से परवर्ती (पाँचवीं शती ई०) सिद्ध करने का प्रयास किया है। इसी प्रकार डॉ० सागरमल जी ने गुणस्थानसिद्धान्त और नय-प्रमाण-सप्तभंगी को जिनोपदिष्ट न मानकर छद्मस्थ आचार्यों द्वारा विकसित बतलाया है और कहा है कि तत्त्वार्थसूत्र में ये दोनों सिद्धान्त उपलब्ध नहीं होते, जब कि कुन्दकुन्दसाहित्य में उपलब्ध होते हैं, अतः कुन्दकुन्द उमास्वाति से उत्तरवर्ती (५वीं शती ई० के) हैं। दशम अध्याय में इन तीनों विकासवादों

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

को अखण्ड्य प्रमाणों द्वारा मिथ्या सिद्ध किया गया है, जिससे कुन्दकुन्द के अस्तित्व को ईसा की पाँचवीं शताब्दी में सिद्ध करने का प्रयत्न धराशायी हो जाता है और उनके ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी में विद्यमान होने का तथ्य अक्षुण्ण रहता है।

एकादश अध्याय—षट्खण्डागम को केवल श्वेताम्बर विद्वान् डॉ० सागरमल जी ने यापनीयग्रन्थ माना है। उनका प्रमुख तर्क यह है कि उसके प्रथम खण्ड 'सत्प्ररूपणा' (पुस्तक १) के ९३वें सूत्र में मणुसिणी (मनुष्यस्त्री) में संयत-गणुस्थान बतलाये गये हैं। 'मणुसिणी' शब्द का अर्थ केवल द्रव्यस्त्री है, उसे जो भावस्त्री का भी वाचक माना गया है, वह गलत है। इससे सिद्ध है यह ग्रन्थ स्त्रीमुक्तिसमर्थक यापनीयसम्प्रदाय का है। इसे स्त्रीमुक्ति-समर्थक श्वेताम्बरसम्प्रदाय का इसलिए नहीं माना जा सकता कि यह शौरसेनी प्राकृत में है। श्वेताम्बरसम्प्रदाय के सभी प्राकृतग्रन्थ अर्धमागधी में रचे गये हैं।

एकादश अध्याय में इस तर्क का निरसन करने के लिए अनेक युक्तिप्रमाणों से सिद्ध किया गया है कि जो द्रव्य (शरीर) से स्त्री है, उसे तो षट्खण्डागम में 'मणुसिणी' कहा ही गया है, किन्तु जो द्रव्य से स्त्री नहीं हैं, अपितु पुरुष है, तथापि स्त्रीवेदनोकषाय के उदय से स्त्रीत्वभाव से युक्त है, उसे भी 'मणुसिणी' शब्द से अभिहित किया गया है। यह भी दर्शाया गया है कि ऐसे मनुष्यों के लिए सर्वार्थसिद्धि (१/७/२६/पृ.१७), तत्त्वार्थराजवार्तिक (९/७/११/पृ.६०५) आदि अन्य दिगम्बरजैन ग्रन्थों में भी 'मानुषी' शब्द प्रयुक्त हुआ है तथा इस प्रकार के मनुष्य, लोक में भी मिलते हैं। षट्खण्डागम के उपर्युक्त सूत्र में ऐसे ही स्त्रीत्वभाव से युक्त पुरुषशरीरधारी मनुष्यों को 'मणुसिणी' शब्द से अभिहित करते हुए उनमें संयतगुणस्थानों का कथन किया गया है। अतः षट्खण्डागम स्त्रीमुक्ति-प्रतिपादक ग्रन्थ नहीं है।

किसी मनुष्य का स्त्रीवेदनोकषाय-नामक कर्म के उदय से भाव से स्त्री होना और पुरुषांगोपांग-नामकर्म के उदय से द्रव्य (शरीर) से पुरुष होना वेदवैषम्य कहलाता है। कर्मभूमि के किसी-किसी गर्भज संज्ञी-असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच एवं मनुष्य मे ऐसा वेदवैषम्य होता है, यह दिगम्बरजैन-कर्मसिद्धान्त का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। इस वेदवैषम्य के कारण लोक में दो प्रकार के पुरुष मिल सकते हैं—एक वह, जो मन (भाव) और शरीर (द्रव्य) दोनों से पुरुष हो और दूसरा वह, जो मन से स्त्री हो, लेकिन शरीर से पुरुष। इन दोनों ही प्रकार के पुरुषों का मोक्षसंभव है। किन्तु जो मनुष्य, भाव से पुरुष हो, परन्तु द्रव्य से स्त्री, उसका मोक्ष संभव नहीं है।

इस वेदवैषम्य को यापनीय-आचार्य पाल्यकीर्ति शाकटायन (९वीं शताब्दी ई०) और बीसवीं शती ई० के दिगम्बरजैन विद्वान् प्रो० (डॉ०) हीरालाल जी जैन ने अमान्य किया है। इन दोनों विद्वानों की वेदवैषम्यविरोधी युक्तियों का सप्रमाण-सयुक्तिक निरसन भी प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

इस अध्याय में षट्खण्डागम में उपलब्ध उन सिद्धान्तों का भी वर्णन किया गया है, जो यापनीयमत के विरुद्ध हैं और इस बात के अखण्ड्य प्रमाण हैं कि षट्खण्डागम यापनीयपरम्परा का नहीं, अपितु दिगम्बरपम्परा का ग्रन्थ है। यहाँ यह भी सिद्ध किया गया है कि षट्खण्डागम की रचना ईसापूर्व प्रथम शती के पूर्वार्ध में हुई थी और यापनीयसम्प्रदाय का जन्म ईसोत्तर पाँचवीं शताब्दी के प्रारंभ में हुआ था। इस कारण भी षट्खण्डागम का यापनीयग्रन्थ होना असंभव है।

डॉ० सागरमल जी ने षट्खण्डागम को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए और भी जो तर्क उपस्थित किये हैं, उन सबका निरसन इस अध्याय में किया गया है।

द्वादश अध्याय—डॉ० सागरमल जी ने 'कसायपाहुड' को भी यापनीयसम्प्रदाय का ग्रन्थ बतलाया है और इसके समर्थन में यह तर्क रखा है कि उसमें स्त्री, पुरुष और नपुंसक के अपगतवेदी होकर चतुर्दश गुणस्थान तक पहुँचने की बात कही गयी है, जो उसके स्त्रीमुक्ति-समर्थक होने का प्रमाण है। चूँकि वह अर्धगामधी प्राकृत में न होकर शौरसैनी प्राकृत में है, इसलिए श्वेताम्बरपरम्परा का ग्रन्थ नहीं है, अपितु यापनीयपरम्परा का है।

उक्त मत का निरसन करने के लिए इस अध्याय में यह प्रमाण प्रस्तुत किया गया है कि कसायपाहुड में स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद, इन तीन भाववेदों (नोकषायों) का पृथक्-पृथक् अस्तित्व एवं गुणस्थानसिद्धान्त स्वीकार किया गया है। ये दोनों बातें यापनीयों को अमान्य हैं। अपगतवेदत्व भी वेदत्रय के अस्तित्व की मान्यता और गुणस्थान- सिद्धान्त पर आश्रित होने से यापनीयमत के विरुद्ध है, अतः कसायपाहुड यापनीयपरम्परा का नहीं, अपितु दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ है।

श्वेताम्बरमुनि श्री हेमचन्द्रविजय जी ने कसायपाहुड और उसके चूर्णिसूत्रों को श्वेताम्बरग्रन्थ सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। उनके द्वारा विन्यस्त हेतुओं का सप्रमाण निरसन सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री ने अपने एक लेख में किया है। यह लेख भी प्रस्तुत अध्याय में ज्यों का उद्धृत किया गया है।

फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

तृतीय खण्ड की विषयवस्तु

इस खण्ड में तेरहवें अध्याय से लेकर पच्चीसवें अध्याय तक कुल तेरह अध्याय हैं।

त्रयोदश अध्याय—प्रस्तुत अध्याय में इस भ्रान्ति का निवारण किया गया है कि भगवती-आराधना यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ को सर्वप्रथम दिगम्बर विद्वान् पं० नाथूराम जी प्रेमी ने यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ घोषित किया था। फिर तो श्वेताम्बरमुनि श्री कल्याणविजय जी, दिगम्बर विद्वान् प्रो० हीरालाल जी जैन, दिगम्बर विदुषी श्रीमती डॉ० कुसुम पटोरिया, श्वेताम्बर विद्वान् डॉ० सागरमल जी जैन आदि ने भी इसे यापनीयसम्पद्राय का ग्रन्थ मान लिया। इसके समर्थन में इन सब विद्वानों ने उन्हीं हेतुओं का अनुसरण किया है, जो पं० नाथूराम जी प्रेमी ने प्रस्तुत किये हैं।

प्रेमी जी ने जो प्रमुख तर्क दिया है, वह यह है कि भगवती-आराधना में मुनि के लिए सवस्त्र अपवादलिंग का विधान है। किन्तु यह उनकी महाभ्रान्ति है। भगवती-आराधना में मुनि के लिए सवस्त्र अपवादलिंग का विधान नहीं है, अपितु मुनि के नाग्न्यलिंग को उत्सर्गलिंग और श्रावक के सवस्त्रलिंग को अपवादलिंग शब्द से अभिहित किया गया है। इसकी पुष्टि भगवती-आराधना के कर्त्ता शिवार्य तथा टीकाकार अपराजित सूरि के अनेक वचनों से की गयी है। इन दोनों आचार्यों ने मुनि के लिए आचेलक्य को अनिवार्य बतलाया है, अपवादलिंग का कोई विकल्प नहीं रखा, जिससे सिद्ध है कि भगवती-आराधना दिगम्बरपम्परा का ग्रन्थ है, यापनीयपरम्परा का नहीं।

प्रेमी जी ने दूसरा तर्क देते हुए कहा कि 'भगवती-आराधना की कई गाथाएँ दिगम्बरजैनमत के विरुद्ध हैं और अनेक गाथाएँ श्वेताम्बरग्रन्थों से ग्रहण की गयी हैं। यह यापनीयग्रन्थ में ही संभव है।' यह तर्क भी भ्रान्ति से परिपूर्ण है। जिन गाथाओं को दिगम्बरजैनमत के विरुद्ध बतलाया गया है, वे दिगम्बरमत के सर्वथा अनुकूल हैं तथा जो गाथाएँ श्वेताम्बरग्रन्थों से गृहीत बतलायी गयी हैं, वे दिगम्बर-श्वेताम्बर-भेद से पूर्व की मूल-अचेल-निर्ग्रन्थपरम्परा से आयी हैं। अतः भगवती-आराधना यापनीयग्रन्थ नहीं है। इन तथ्यों की सिद्धि अनेक युक्ति-प्रमाणों से प्रस्तुत अध्याय में की गयी है। भगवती-आराधना को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए प्रेमी जी द्वारा प्रस्तुत सभी तर्कों का निरसन यहाँ किया गया है। डॉ० सागरमल जी ने भी दो नये हेतु जोड़े हैं, उनकी अप्रामाणिकता भी उद्घाटित की गयी है।

भगवती-आराधना में सापवाद सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति, परतीर्थिकमुक्ति केवलिभुक्ति आदि का निषेध किया गया है, जो यापनीयमत के सिद्धान्त हैं। इसमें यापनीयों को अमान्य गुणस्थानसिद्धान्त, वेदत्रय एवं वेदवैषम्य को मान्य किया गया है। इन लक्षणों से स्पष्टतः सिद्ध होता है कि भगवती-आराधना दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ है, यापनीयपरम्परा का नहीं। इन सबके उदाहरण इस अध्याय में विस्तार से प्रस्तुत किये गये हैं।

चतुर्दश अध्याय—जिन विद्वानों ने भगवती-आराधना को यापनीयग्रन्थ माना है, उन्होंने ही उसके टीकाकार अपराजितसूरि को भी यापनीय आचार्य कहा है। इसका प्रमुख कारण यह बतलाया है कि अपराजितसूरि ने श्वेताम्बर-आगमों से वे उद्धरण दिये हैं, जिनमें यह कहा गया है कि साधु विशेष परिस्थितियों में अपवादरूप से वस्त्र धारण कर सकता है। इस प्रकार उन्होंने श्वेताम्बर-आगमों के आधार पर विशेष परिस्थिति में साधु के अपवादरूप से वस्त्रधारण को उचित ठहराया है। श्वेताम्बर-आगमों के विधान को श्वेताम्बर के अतिरिक्त वही व्यक्ति मान्यता दे सकता है, जो यापनीय हो, अतः सिद्ध है कि अपराजितसूरि यापनीय हैं।

उपर्युक्त विद्वानों की यह मान्यता भी महान् भ्रान्ति का परिणाम है। प्रस्तुत अध्याय में इसका निराकरण किया गया है। निराकरण हेतु सप्रमाण सिद्ध किया गया है कि अपराजित सूरि ने श्वेताम्बर-आगमों से उद्धरण देकर साधु के लिए विशेष परिस्थिति में वस्त्रधारण का औचित्य नहीं ठहराया है, अपितु श्वेताम्बर शंकाकार (**'अथैवं मन्यसे पूर्वागमेषु**---' वि.टी./भ.आ./गा.४२३/पृ.३२३, ३२४) का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट किया है कि श्वेताम्बर-आगमों में भी मोक्ष के लिए अचेलत्व को आवश्यक बतलाया गया है और भिक्षुओं को वस्त्रग्रहण की अनुमति विशेष परिस्थितियों में ही दी गयी है। वे विशेष परिस्थितियाँ तीन हैं- १. नग्न रहने में लज्जा की अनुभूति होना, २. पुरुषचिह्न का अशोभनीय होना और ३. परीषहसहन में असमर्थ होना। किन्तु विशेष परिस्थिति में जो उपकरण ग्रहण किया जाता है, उसके ग्रहण की विधि तथा ग्रहण किये गये उपकरण के त्याग का कथन भी आगम में आवश्यक कहा गया है। अतः जब आगम के आधार पर विशेष परिस्थिति में साधु के लिए वस्त्रग्रहण का विधान बताया जाता है, तब उसके त्याग का विधान भी अवश्य बताया जाना चाहिए। (वि.टी./भ.आ./गा.४२३/पृ.३२५)। अपराजितसूरि ने 'अचेलता' के विरोधी श्वेताम्बरागम-वचन को स्पष्ट शब्दों अप्रामाणिक ठहराया है। श्वेताम्बरपक्ष को सम्बोधित करते हुए वे कहते हैं कि यदि आप यह मानते हैं कि सूत्र (आगम) में पात्र की प्रतिष्ठापना कही गयी है, अतः संयम के लिए पात्रग्रहण आगमोक्त सिद्ध होता है,

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि अचेलता का अर्थ है परिग्रहत्याग, और पात्र परिग्रह है, अतः उसका भी त्याग आगमसिद्ध ही है—"**पात्रप्रतिष्ठापना सूत्रेणोक्तेति संयमार्थं पात्रग्रहणं सिध्यतीति मन्यसे नैव, अचेलता नाम परिग्रहत्यागः, पात्रं च परिग्रह इति तस्यापि त्याग सिद्ध एवेति।**" (वि.टी./भ.आ./गा. ४२३/पृ.३२५)।

इस प्रकार अपराजितसूरि ने श्वेताम्बर-आगमों के आधार पर दिगम्बरमत की ही पुष्टि की है, श्वेताम्बरमत की नहीं। उन्होंने जोर देकर कहा है कि मुक्ति का अभिलाषी मुनि वस्त्र ग्रहण नहीं करता, क्योंकि वस्त्र मुक्ति का उपाय नहीं है तथा केवल वस्त्र का त्याग करने और शेष परिग्रह रखने से जीव संयत (मुनि) नहीं होता- "**मुक्त्यर्थी च यतिर्न चेलं गृह्णाति मुक्तेरनुपायत्वात्।**" (वि.टी./भ.आ./गा.८४)। "**नैव संयतो भवतीति वस्त्रमात्रत्यागेन शेषपरिग्रहसमन्वितः।**" (वि.टी./भ.आ./गा. १११८)। इन वचनों से स्पष्ट है कि अपराजितसूरि ने श्वेताम्बर-आगमों के प्रामाण्य को स्वीकार नहीं, अस्वीकार किया है। अतः यह कहना कि अपराजितसूरि श्वेताम्बर-आगमों को प्रमाण मानते हैं, एक हिमालयाकार भ्रान्ति है।

अपराजितसूरि ने विजयोदयाटीका में सवस्त्रमुक्ति-निषेध के अतिरिक्त स्त्रीमुक्ति, परतीर्थिकमुक्ति एवं केवलिभुक्ति का भी निषेध किया है, जो यापनीयमत के विरुद्ध है। प्रस्तुत अध्याय में इन सबके प्रमाण प्रस्तुत कर सिद्ध किया गया है कि अपराजित-सूरि पक्के दिगम्बर थे, उन्हें जो यापनीय मान लिया है, वह बहुत बड़ी भ्रान्ति है।

पञ्चदश अध्याय—इस अध्याय में उन हेतुओं की असत्यता एवं हेत्वाभासता प्रकट की गयी है, जो यापनीयपक्षधर विद्वानों ने मूलाचार को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किये हैं। इसके साथ उन प्रमाणों का साक्षात्कार कराया गया है, जिनसे सिद्ध होता है कि मूलाचार शतप्रतिशत दिगम्बरग्रन्थ है।

षोडश अध्याय—इस अध्याय में तत्त्वार्थसूत्र को श्वेताम्बर, यापनीय एवं कपोलकल्पित उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ परम्परा का ग्रन्थ सिद्ध करने के लिए उपस्थित किये गये हेतुओं का निरसन कर उसे दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ सिद्ध करने-वाले प्रमाण और युक्तियाँ विन्यस्त की गयी हैं।

सप्तदश अध्याय—इस अध्याय में उपर्युक्त न्याय से तिलोयपण्णत्ती के कर्त्ता यतिवृषभ को दिगम्बराचार्य सिद्ध किया गया है।

अष्टादश अध्याय—इस अध्याय में सन्मतिसूत्रकार सिद्धसेन को श्वेताम्बर, यापनीय एवं उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थपरम्परा का आचार्य सिद्ध करनेवाले हेतुओं

फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

को असत्य या हेत्वाभास सिद्धकर वे प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि सन्मतिसूत्रकार सिद्धसेन दिगम्बराचार्य हैं, अतः सन्मतिसूत्र दिगम्बरग्रन्थ है। इसमें रत्नकरण्डश्रावकार को स्वामी समन्तभद्र की कृति न मानने के पक्ष में रखे गये तर्कों का भी निरसन किया गया है और यह भी स्थापित किया गया है कि सन्मतिसूत्रकार सिद्धसेन पूज्यपाद स्वामी से पूर्ववर्ती नहीं, अपितु उत्तरवर्ती हैं।

इसी प्रकार यापनीयग्रन्थ होने के पक्ष में रखे गये हेतुओं का निरसन कर दिगम्बर-ग्रन्थसाधक प्रमाणों के प्रस्तुतीकरण द्वारा **एकोनविंश अध्याय** में रविषेणकृत पद्मपुराण (पद्मचरित) को, **विंश अध्याय** में जटासिंहनन्दिकृत वराङ्गचरित को, **एकविंश अध्याय** में पुन्नाटसंघीय जिनसेनरचित हरिवंशपुराण को, **द्वाविंश अध्याय** में स्वयम्भू-निर्मित पउमचरिउ को, **त्रयोविंश अध्याय** में हरिषेण-प्रणीत बृहत्कथाकोश को, **चतुर्विंश अध्याय** में छेदपिण्ड, छेदशास्त्र एवं प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी को और **पंचविंश अध्याय** में बृहत्प्रभाचन्द्रकृत तत्त्वार्थसूत्र को दिगम्बरग्रन्थ सिद्ध किया गया है।

इस खण्ड के अन्त में भी **शब्दविशेष-सूची** एवं **प्रयुक्त ग्रन्थों की सूची** निबद्ध की गयी हैं।

को असत्य या हेत्वाभास सिद्धकर वे प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि सन्मतिसूत्रकार सिद्धसेन दिगम्बराचार्य हैं, अतः सन्मतिसूत्र दिगम्बरग्रन्थ है। इसमें रत्नकरण्डश्रावकार को स्वामी समन्तभद्र की कृति न मानने के पक्ष में रखे गये तर्कों का भी निरसन किया गया है और यह भी स्थापित किया गया है कि सन्मतिसूत्रकार सिद्धसेन पूज्यपाद स्वामी से पूर्ववर्ती नहीं, अपितु उत्तरवर्ती हैं।

इसी प्रकार यापनीयग्रन्थ होने के पक्ष में रखे गये हेतुओं का निरसन कर दिगम्बर-ग्रन्थसाधक प्रमाणों के प्रस्तुतीकरण द्वारा **एकोनविंश अध्याय** में रविषेणकृत पद्मपुराण (पद्मचरित) को, **विंश अध्याय** में जटासिंहनन्दिकृत वराङ्गचरित को, **एकविंश अध्याय** में पुन्नाटसंघीय जिनसेनरचित हरिवंशपुराण को, **द्वाविंश अध्याय** में स्वयम्भू-निर्मित पउमचरिउ को, **त्रयोविंश अध्याय** में हरिषेण-प्रणीत बृहत्कथाकोश को, **चतुर्विंश अध्याय** में छेदपिण्ड, छेदशास्त्र एवं प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी को और **पंचविंश अध्याय** में बृहत्प्रभाचन्द्रकृत तत्त्वार्थसूत्र को दिगम्बरग्रन्थ सिद्ध किया गया है।

इस खण्ड के अन्त में भी **शब्दविशेष-सूची** एवं **प्रयुक्त ग्रन्थों की सूची** निबद्ध की गयी हैं।

संकेताक्षर-विवरण

अ.--- / प्र.---	अध्याय क्रमांक / प्रकरण क्रमांक।
अ.---/ प्र.---/ शी. ---	अध्याय क्रमांक / प्रकरण क्रमांक / शीर्षक क्रमांक।
अनु.	अनुच्छेद (पैराग्राफ)।
अभि. रा. को. /---/---	अभिधान राजेन्द्र कोष / भाग क्रमांक / पृष्ठ क्रमांक।
आ. ख्या.	आत्मख्याति व्याख्या।
आचारांग / ---/ ---/---/---	श्रुतस्कन्ध क्रमांक / अध्ययन क्रमांक/ उद्देशक क्रमांक / सूत्र क्रमांक।
आव. चू. / उपो. निर्यु. / आव. सू. / पू. भा.	आवश्यकचूर्णि / उपोद्घातनिर्युक्ति / आवश्यकसूत्र / पूर्वभाग।
आव. निर्युक्ति	आवश्यकनिर्युक्ति
आ. वृ. / मूला.	आचारवृत्ति / मूलाचार।
आदि पु. / ---/---	आदिपुराण / पर्व क्रमांक / श्लोक क्रमांक।
आतुरप्रत्या.	आतुरप्रत्याख्यान।
आ. मी.	आप्तमीमांसा।
आव. सू. /---/---	आवश्यकसूत्र / आवश्यक क्रमांक / सूत्र क्रमांक।
इ. न. श्रुता.	इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार।
इण्डि. ऐण्टि.	दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी।
इष्टो.	इष्टोपदेश ।
ईशाद्यष्टो.	ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद्।
उत्त. सू. /---/---	उत्तराध्ययनसूत्र / अध्ययन क्रमांक / गाथा क्रमांक।
ऋग्वेद /---/---/---	मंडल क्रमांक / सूक्त क्रमांक / ऋचा-क्रमांक।

क. पा.	कसायपाहुड।
कै. च. शास्त्री	सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री।
क्र.	क्रमांक।
गुण. सिद्धा. : एक वि.	गुणस्थान सिद्धान्त : एक विश्लेषण।
गो. क.	गोम्मटसार - कर्मकाण्ड।
गो. जी.	गोम्मटसार - जीवकाण्ड।
चा. पा.	चारित्तपाहुड।
छान्दोग्योपनिषद् /---/---/---	अध्याय क्र. / खण्ड क्र. / वाक्य क्र. ।
ज. ध. / क.पा. /भा---	जयधवलाटीका / कसायपाहुड / भाग क्रमांक।
ज. ध. / क. पा. / भा. ---/ गा.---/ अनु. ---/ पृ. ---	जयधवला / कसायपाहुड / भाग क्रमांक / गाथा क्र./ अनुच्छेद क्रमांक / पृष्ठ क्रमांक।
जाबालो.	जाबालोपनिषद्।
जी. त. प्र. / गो. क.	जीवतत्त्वप्रदीपिकावृत्ति / गोम्मटसार-कर्मकाण्ड।
जी. त. प्र. / गो. जी.	जीवतत्त्वप्रदीपिकावृत्ति / गोम्मटसार-जीवकाण्ड।
जै. आ. सा. म. मी.	जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा।
जै. ध. मौ. इ.	जैनधर्म का मौलिक इतिहास।
जै. ध. या. स.	जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय।
जै. शि. सं. / मा. च.	जैन-शिलालेख-संग्रह / माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति, मुंबई।
जै. शि. सं. / भा. ज्ञा.	जैन-शिलालेख-संग्रह / भारतीय ज्ञानपीठ।
जै. स. या. सं. प्र.	''जैन सम्प्रदाय के यापनीयसंघ पर कुछ और प्रकाश'' (लेख)।
जै. सं. सं. सं. शोलापुर	जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर।
जै. सा. इ.	जैन साहित्य और इतिहास।
जै. सा. इ. — प्रेमी	जैन साहित्य और इतिहास —पं.नाथूराम प्रेमी।

जै. सा. इ. (कै. च. शास्त्री)	जैनसाहित्य का इतिहास (सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाश चन्द्र शास्त्री)।
जै. सा. इ. / पू. पी.	जैन साहित्य का इतिहास / पूर्वपीठिका।
जै. सा. इ. वि. प्र. / खं.१	जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश / प्रथमखंड।
जै. सि. को. /---/---	जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश / भाग क्रमांक / पृष्ठ क्रमांक।
जै. सा. बृ. इ. / ---	जैन साहित्य का बृहद् इतिहास / भाग क्रमांक।
जै. सि. भा. / भा. ---/ कि. ---	जैन सिद्धान्त भास्कर / भाग क्रमांक / किरण क्रमांक।
डॉ. सा. म. जै. अभि. ग्र.	डॉ० सागरमल जैन अभिनन्दन ग्रन्थ।
त. नि. प्रा.	तत्त्वनिर्णयप्रासाद।
त. दी.	तत्त्वदीपिकावृत्ति।
तत्त्वा. भाष्य.	तत्त्वार्थाधिगमभाष्य।
त. भाष्यवृत्ति	तत्त्वार्थभाष्यवृत्ति।
त. र. दी./ षड्. समु. /---/---	तर्करहस्यदीपिका (गुणरत्नकृत टीका) / षड्दर्शन-समुच्चय / अधिकार-क्रमांक / पृष्ठक्रमांक।
त. रा. वा. /---/--- /---	तत्त्वार्थराजवार्तिक / अध्याय क्रमांक / सूत्र क्रमांक / वार्तिक क्रमांक
त. सू. ---/---	तत्त्वार्थसूत्र / अध्याय क्रमांक / सूत्र क्रमांक।
तत्त्वार्थ	तत्त्वार्थसूत्र।
त. सू. / वि. स.	तत्त्वार्थसूत्र / विवेचनसहित।
त. सू. जै. स.	तत्त्वार्थसूत्र-जैनागमसमन्वय।
ता. वृ.	तात्पर्यवृत्ति।
ति. प. /---/---	तिलोयपण्णत्ती / महाधिकार क्रमांक / गाथा क्रमांक।
ती. म. आ. प./---	तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य-परम्परा / खण्ड क्रमांक।

दं. पा.	दंसणपाहुड।
द्र. सं.	द्रव्यसंग्रह।
द्वि. सं.	द्वितीय संस्करण।
दश. वै. सू.	दशवैकालिकसूत्र।
दि.	दिगम्बर।
धम्मपद-अट्ठकथा / भा.---/---/---	धम्मपद-अट्ठकथा / भाग क्र. / वग्ग क्र./ कथा क्र.
धवला / ष. खं./ पु.---	धवलाटीका / षट्खण्डागम / पुस्तक क्रमांक।
नि. सा.	नियमसार।
न्यायदीपिका /---/---	प्रकाश क्रमांक / अनुच्छेद क्रमांक।
न्या. वा. वृ.	न्यायावतारवार्तिकवृत्ति।
प. च. / ---/---/---/---	पउमचरिउ / भाग क्र./ सन्धि क्र. / दोहासमूह क्र. / दोहा क्रमांक।
प. पु./---/---	पद्मपुराण (पद्मचरित)/ भाग क्र./पर्व क्र./ श्लोक क्र.।
पद्मपुराण /---/---/---/---	भाग क्रमांक / खण्ड क्रमांक (भूमिखण्ड) / अध्याय क्रमांक / श्लोक क्रमांक।
प. प्र./---/---	परमात्मप्रकाश / महाधिकार क्रमांक / दोहा क्रमांक।
परमा. प्र.	परमात्मप्रकाश।
पं. का.	पञ्चास्तिकाय।
पं. र. च. जै. मुख्तार : व्यक्ति. कृति.	पण्डित रतनचन्द्र जैन मुख्तार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व।
परि. पर्व	परिशिष्टपर्व।
पा. टि.	पादटिप्पणी।
पुरा. जै. वा. सू.	पुरातन-जैन-वाक्य-सूची।
पु.	पुस्तक।
पृ.	पृष्ठक्रमांक।
प्र. सं.	प्रथम संस्करण।

प्रव. परी. /---/---/---	प्रवचनपरीक्षा / भाग क्रमांक (पूर्व या उत्तर)/ विश्राम क्रमांक / गाथा क्रमांक।
प्र. सा. /---/---	प्रवचनसार / अधिकार क्रमांक / गाथा क्रमांक।
प्रस्ता.	प्रस्तावना।
प्रा. सा. इ.	प्राकृत साहित्य का इतिहास।
बा. अ.	बारस अणुवेक्खा।
बा. अणु.	बारस अणुवेक्खा।
बृ. क. को.	बृहत्कथाकोश।
बृहत्कल्पसूत्र /---/---	उद्देशक्रमांक / सूत्रक्रमांक।
बृ. कल्प. / लघुभाष्यवृत्ति /---/---	बृहत्कल्पसूत्र / लघुभाष्यवृत्ति / उद्देशक्रमांक / गाथा-क्रमांक।
बृहदारण्यकोपनिषद्/---/---/---	अध्याय क्रमांक / ब्राह्मण क्रमांक / वाक्य क्रमांक।
बो. पा.	बोधपाहुड।
ब्रह्मसूत्र /---/---/---	अध्याय क्रमांक / पाद क्रमांक / सूत्र क्रमांक।
भ. आ.	भगवती-आराधना।
भट्टा. सम्प्र.	भट्टारकसम्प्रदाय।
भ. बा. च. /---/---	भद्रबाहुचरित / परिच्छेद क्रमांक / श्लोक क्रमांक।
भ. बा. क.	भद्रबाहुकथानक।
भा.	भाग।
भा. ज्ञा.	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ली / वाराणसी।
भा. पु. /---/---/---	भागवतपुराण / स्कन्ध क्रमांक / अध्याय क्रमांक / श्लोक क्रमांक या गद्यखण्ड क्रमांक ।
भा. पा.	भावपाहुड।
भा. इ. ए. दृ.	भारतीय इतिहास : एक दृष्टि (डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन)।

भा. सं. जै. ध. यो. दा.	भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान।
महापुराण /---/---	सर्ग क्रमांक / श्लोक क्रमांक।
महाभारत /---/---/---	पर्व क्रमांक / अध्याय क्रमांक / श्लोक क्रमांक।
मा. च.	माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति, बम्बई।
मूला.	मूलाचार।
मूला. / पू.	मूलाचार / पूर्वार्ध।
मूला. / उत्त.	मूलाचार / उत्तरार्ध।
मो. पा.	मोक्खपाहुड।
या. औ. उ. सा.	यापनीय और उनका साहित्य।
यु. अनु.	युक्त्यनुशासन।
यो. सा.	योगसार
र. क. श्रा.	रत्नकरण्डश्रावकाचार।
लिं. पा.	लिंगपाहुड।
वरांगचरित /---/---	वरांगचरित / सर्ग क्रमांक / श्लोक क्रमांक।
वायुपुराण /---/---	वायुपुराण / अध्याय क्रमांक / श्लोक क्रमांक।
वि. टी. / भ. आ.	विजयोदयाटीका / भगवती-आराधना।
विशे. भा.	विशेषावश्यकभाष्य।
विष्णुपुराण /---/---/---	विष्णुपुराण / अंश क्र. / अध्याय क्र./ श्लोक क्र.।
व्या. प्र. /---/---/---	व्याख्याप्रज्ञप्ति / शतक क्रमांक / उद्देशक क्रमांक / प्रश्नोत्तर क्रमांक
शो. प्र.	शोलापुर प्रकाशन।
श्र. भ. म.	श्रमण भगवान् महावीर।
श्वे.	श्वेताम्बर।
ष. ख. /---/---,---,---	षट्खण्डागम / पुस्तक क्रमांक / खण्ड क्रमांक, भाग क्रमांक, सूत्र क्रमांक।

षट्. परि.	षट्खण्डागम-परिशीलन।
स. सा. /---	समयसार / गाथा क्रमांक।
समवायांग /---/---	समवाय क्रमांक / सूत्र क्रमांक।
स. तन्त्र	समाधितन्त्र (समाधिशतक)।
सं. सा. इ.– ब. दे. उ.	संस्कृत साहित्य का इतिहास — बलदेव उपाध्याय।
स. सि. /---/---/---	सर्वार्थसिद्धि/अध्याय क्रमांक/ सूत्र क्रमांक/ अनुच्छेद क्रमांक।
सा. ध.	सागारधर्मामृत।
सुत्त. पा.	सुत्तपाहुड।
सूत्रकृतांग /---/---/---	श्रुतस्कन्ध क्रमांक/अध्ययन क्रमांक/उद्देशक क्रमांक।
स्त्रीनिर्वाण प्र.	स्त्रीनिर्वाणप्रकरण।
स्था. सू./---/---/---	स्थानांगसूत्र/स्थान क्रमांक/उद्देशक्रमांक/सूत्र क्रमांक।
स्था. सू./---/---	स्थानांगसूत्र / स्थान क्रमांक / सूत्र क्रमांक ।
स्व. स्तो.	स्वयम्भूस्तोत्र।
स्वा. स. भ.	स्वामी समन्तभद्र।
ह. पु. (हरि. पु.)/---/---	हरिवंशपुराण / सर्गक्रमांक / श्लोकक्रमांक।
हारि. वृत्ति	हारिभद्रीय वृत्ति।
हेम. वृत्ति / विशे. भा.	मलधारी हेमचन्द्रसूरिकृत वृत्ति / विशेषावश्यक-भाष्य।
Asp. of Jaino.	Aspects of Jainology.
F. N.	Foot Note.

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अष्टम अध्याय

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अष्टम अध्याय

कुन्दकुन्द के प्रथमतः भट्टारक होने की कथा मनगढ़न्त

प्रथम प्रकरण

भट्टारक होने की कल्पना का हेतु

कुन्दकुन्द ने स्वयं को अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु का परम्परा-शिष्य तो कहा है, किन्तु अपने साक्षाद्गुरु का किसी भी ग्रन्थ में उल्लेख नहीं किया। मुनि कल्याणविजय जी ने इसका कारण यह बतलाया है कि कुन्दकुन्द आरम्भ में यापनीयसंघ के साधु थे। उसमें विक्रम की छठी शताब्दी के लगभग चैत्यवास की प्रवृत्ति आरंभ हो गई थी। यापनीयसाधु राजा आदि से भूमि-दान वगैरह लेने लगे थे। अर्वाचीन कुन्दकुन्द जैसे त्यागियों को यह शिथिलता अच्छी नहीं लगी। उन्होंने केवल स्थूल परिग्रह का ही नहीं, बल्कि अब तक इस सम्प्रदाय में जो आपवादिक लिंग के नाम से वस्त्रपात्र की छूट थी, उसका भी विरोध किया और तब तक प्रमाण माने जाने वाले श्वेताम्बर आगम-ग्रन्थों को भी इन उद्धारकों ने अप्रामाणिक ठहराया और उन्हीं आगमों के आधार पर अपनी तात्कालिक मान्यता के अनुसार नये धार्मिक ग्रन्थों का निर्माण करना शुरू किया। किन्तु उनके इस क्रियोद्धार में यापनीयसंघ के अधिकतर साधु सम्मिलित नहीं हुए। उनके गुरु भी शामिल नहीं हुए, इसलिए कुन्दकुन्द ने उन्हें शिथिलाचारी मानकर अपने ग्रंथों में उनके नाम का उल्लेख नहीं किया।[१] मुनि जी के शब्द नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं—

"कुन्दकुन्दाचार्य ने अपने किसी भी ग्रन्थ में अपनी गुरु - परम्परा का ही नहीं, अपने गुरु का भी नामोल्लेख नहीं किया। इससे मालूम होता है कि कुन्दकुन्द के क्रियोद्धार में उनके गुरु भी शामिल नहीं हुए होंगे और इसी कारण से उन्होंने शिथिलाचारी समझकर अपने गुरु-प्रगुरुओं का नाम-निर्देश नहीं किया होगा।" (श्र.भ.म./पा.टि./पृ. ३२७)।

---

१. देखिये, अध्याय २/प्रकरण २/शीर्षक ३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

किन्तु, द्वितीय अध्याय के द्वितीय प्रकरण (शीर्षक ७,८,९ एवं १०) में सिद्ध किया जा चुका है कि आचार्य कुन्दकुन्द के यापनीयसंघ में दीक्षित होने की कथा कपोलकल्पित है, अतः यह कहानी स्वतः मनगढ़न्त सिद्ध हो जाती है कि उनके यापनीयगुरु शिथिलाचारी थे, इसलिए कुन्दकुन्द ने अपने ग्रन्थों में उनके नाम का उल्लेख नहीं किया।

श्वेताम्बराचार्य श्री हस्तीमल जी ने कुन्दकुन्द के द्वारा अपने गुरु के नाम का उल्लेख न किये जाने का जो कारण बतलाया है, वह मुनि कल्याणविजय जी द्वारा बतलाये गये कारण से मिलता-जुलता है, तो भी उसमें बहुत फर्क है। आचार्य हस्तीमल जी ने यापनीय-आचार्य को कुन्दकुन्द का गुरु न बतलाकर दिगम्बरसम्प्रदाय में ही आविर्भूत भट्टारक-परम्परा के आचार्य जिनचन्द्र को उनका गुरु बतलाया है और कहा है कि जब कुन्दकुन्द को धर्म के तीर्थंकरप्रणीत वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हुआ, तब अपने गुरु के प्रति उनकी श्रद्धा समाप्त हो गई और वे भट्टारकसम्प्रदाय से अलग हो गये। इसी कारण उन्होंने अपने ग्रन्थों में उनका स्मरण नहीं किया। और यही कारण है कि भट्टारकपरम्परा के आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में कुन्दकुन्द की कहीं कोई चर्चा नहीं की। (देखिये, आगे द्वितीय प्रकरण)।

✧✧✧

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

द्वितीय प्रकरण

कुन्दकुन्द को भट्टारक सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत हेतु

१

भट्टारकपरम्परा के विकास के तीन रूपों की कल्पना

आचार्य हस्तीमल जी ने भट्टारकपरम्परा के विकास के तीन रूप बतलाये हैं। वे लिखते हैं कि वीर नि० सं० ६०९ के लगभग हुए संघभेद के थोड़े समय पश्चात् ही श्वेताम्बर, दिगम्बर और यापनीय, तीनों संघों के कुछ श्रमणों ने चैत्यों में रहना प्रारंभ कर दिया था।[२] कुछ समय बाद ये भूमिदान और द्रव्यदान लेने लगे, तब भट्टारक-परम्परा शुरू हो गई। भट्टारकपरम्परा का यह प्रथम स्वरूप था। इसका अस्तित्व वीर नि० सं० ६४० से ८८० तक रहा। वीरनिर्वाण की नौवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में भट्टारकों के पीठ स्थापित होने लगे और उन्होंने राजाओं को प्रभावित कर राज्याश्रय प्राप्त करना भी शुरू कर दिया। मंत्र-तंत्र, ज्योतिष और औषधि आदि के प्रयोग से जनमानस को भी अपने अधीन किया जाने लगा। यह भट्टारकपरम्परा का द्वितीय स्वरूप था, जो ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी तक विद्यमान रहा।[३] बारहवीं शती ई० में दिगम्बरसम्प्रदाय के भट्टारक न केवल वस्त्र धारण करने लगे, अपितु प्रचुर परिग्रह एवं मठों के स्वामी बनकर राजसी ठाठबाट से जीवन व्यतीत करने लगे, साथ ही श्रावकों के धार्मिक शासक भी बन गये। यह भट्टारकपरम्परा का तीसरा और अन्तिम रूप था।[३]

आचार्य हस्तीमल जी ने भट्टारकपरम्परा के इन तीन रूपों में से आचार्य कुन्दकुन्द को दूसरे रूप के अन्तर्गत पाँचवा पट्टाधीश माना है। इस रूप पर प्रकाश डालते हुए वे 'जैनधर्म का मौलिक इतिहास'' (भाग ३) में लिखते हैं—

''वीर निर्वाण की नौवीं शताब्दी के अंतिम चरण में भट्टारकों ने अपने संघों को सुगठित करना प्रारम्भ किया। लोकसम्पर्क बढ़ाने के परिणामस्वरूप उनके संगठन सुदृढ़ होने लगे। मन्दिरों में नियत निवास कर भट्टारकों ने किशोरों को जैनसिद्धान्तों का शिक्षण देना प्रारम्भ किया। औषधि, मन्त्र-तन्त्र आदि के प्रयोग से जन-मानस पर अपना प्रभाव जमाना प्रारम्भ किया। भौतिक आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु जन-मानस का झुकाव भट्टारकों की ओर होने लगा। अपने पाण्डित्य एवं चमत्कारपूर्ण कार्यों के बल पर कतिपय भट्टारकों ने राजाओं को भी अपनी ओर आकर्षित किया। उन्होंने राजसभाओं

---

२. जैनधर्म का मौलिक इतिहास / भा. ३ / पृ. १२६-१२७।
३. वही / पृ. १३४ एवं १४३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

में सम्मानास्पद स्थान प्राप्त किये। कतिपय भट्टारकों को राज्याश्रय प्राप्त हुआ। राजाओं द्वारा सम्मानित होने तथा राजगुरु बनने के परिणाम- स्वरूप भट्टारकों का सर्व-साधारण पर भी उत्तरोत्तर प्रभाव बढ़ने लगा। जन-सहयोग प्राप्त होने पर भट्टारकों ने बड़े-बड़े जिनमंदिरों के निर्माण, उच्च सैद्धान्तिक शिक्षा के शिक्षणकेन्द्रों के उद्घाटन, संचालन आदि अनेक उल्लेखनीय कार्य अपने हाथों में लिए। उन प्रशिक्षणकेन्द्रों से उच्च-शिक्षा-प्राप्त विद्वान् स्नातकों ने धर्म, समाज और साहित्य के क्षेत्र में अनेक उल्लेखनीय कार्य किये। अनुमानतः वीरनिर्वाण सं० १०१० के आसपास इक्ष्वाकु (सूर्यवंशी) कदम्बवंश के राजा शिवमृगेश वर्मा द्वारा अर्हत्प्रोक्त सद्धर्म के आचरण में सदा तत्पर श्वेताम्बर-महाश्रमण- संघ के उपभोग हेतु , निर्ग्रन्थ-महाश्रमण-संघ के उपभोग के लिए तथा अर्हत्-शाला-परम-पुष्कल-स्थान-निवासी भगवान् अर्हत् महाजिनेन्द्र देवता के लिए दिये गये कालबंग नामक गाँव के दान से यह स्पष्टरूप से प्रकट होता है कि जिन श्वेताम्बर, दिगम्बर एवं यापनीय संघों के आचार्यों, श्रमणों ने भूमिदान, ग्रामदान लेना प्रारम्भ कर दिया था, वे वस्तुतः भट्टारकपरम्परा के सूत्रधार थे। विशुद्ध श्रमणाचार का पालन करनेवाले पंचमहाव्रतधारी, पूर्णरूपेण अपरिग्रही, श्रमणों के लिए इस प्रकार भूमिदान ग्रहण करना पूर्णतः शास्त्रविरुद्ध है। ऐसी स्थिति में श्वेताम्बर और दिगम्बर महाश्रमण संघ ने कदम्बनरेश शिवमृगेश वर्मा द्वारा श्रमणों अथवा श्रमणसंघ के उपभोग के लिए दिये गये दान को स्वीकार किया, इससे यही फलित होता है कि इस अभिलेख में यद्यपि भट्टारक शब्द का उल्लेख नहीं है, तथापि भट्टारकों के अनुरूप उनके ग्रामदानादि ग्रहण करने के आचरण से यही सिद्ध होता है कि वे श्वेताम्बर, दिगम्बर अथवा यापनीय अथवा कूर्चक-संघ वस्तुतः भट्टारकसंघ ही थे। उन संघों ने वीरनिर्वाण की ग्यारहवीं शताब्दी के प्रथम दशक तक अपने संघ के नाम से पूर्व 'भट्टारक' विशेषण भले ही नहीं लगाया हो, पर उनके आचार-विचार और कार्यकलाप भट्टारक-आचार-विचार-वृत्ति की ओर उन्मुख हो चुके थे।'' (जै. ध. मौ. इ. / भा.३ / पृ.१३४-१३५)।

आचार्य हस्तीमल जी आगे लिखते हैं—''भट्टारकों की जो पट्टावलियाँ उपलब्ध हुई हैं, उनके कालक्रम पर शोधपूर्ण दृष्टि से विचार करने पर यह विश्वास करने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि वीरनिर्वाण की सातवीं शताब्दी में ही भट्टारकपरम्परा उस प्रथम स्वरूप में उदित हो चुकी थी, जिस प्रथम स्वरूप पर ऊपर विस्तार के साथ प्रकाश डाल दिया गया है। अधिक गहराई में न जाकर केवल **'इंडियन एण्टीक्यूरी' के आधार पर इतिहास के विद्वानों द्वारा कालक्रमानुसार तैयार की गयी भट्टारकपरम्परा के प्रमुख संघ 'नन्दिसंघ' की पट्टावलि** के आचार्यों की नामावलि के शोधपूर्ण सूक्ष्मदृष्टि से अवलोकन-पर्यालोचन पर भी यही तथ्य प्रकाश में आता है कि संघ-भेद (वीर नि० सं० ६०९) के तीन चार दशक पश्चात् ही भट्टारक-परम्परा का एक धर्मसंघ के रूप में बीजारोपण हो चुका था। (जै. ध. मौ. इ. / भा.३ / पृ. १३६)।

श्री दिगम्बर जैन पचबालयति पारमार्थिक एव धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"भट्टारकपरम्परा के उद्भव, प्रसार एवं उत्कर्षकाल के विषय में युक्तिसंगत एवं सर्वजन-समाधानकारी निर्णय पर पहुँचने के लिए "नन्दिसंघ-पट्टावलि के आचार्यों की नामावलि" बड़ी सहायक सिद्ध होगी, इसी दृष्टि से उसे आदि से अन्त तक यथावत्-रूपेण यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

नन्दिसंघ की पट्टावलि के आचार्यों की नामावली

(इण्डियन ऐण्टीक्वेरी के आधार पर)[४]

१.	भद्रबाहु द्वितीय	(४)	२.	गुप्तिगुप्त	(२६)
३.	माघनन्दी	(३६)	४.	जिनचन्द्र	(४०)
५.	कुन्दकुन्दाचार्य	(४९)	६.	उमास्वामी	(१०१)
७.	लोहाचार्य	(१४२)	८.	यशःकीर्ति	(१५३)
९.	यशोनन्दी	(२११)	१०.	देवनन्दी	(२५८)
११.	जयनन्दी	(३०८)	१२.	गुणनन्दी	(३५८)
१३.	वज्रनन्दी	(३६४)	१४.	कुमारनन्दी	(३८६)
१५.	लोकचन्द्र	(४२७)	१६.	प्रभाचन्द्र	(४५३)
१७.	नेमचन्द्र	(४७८)	१८.	भानुनन्दी	(४८७)
१९.	सिंहनन्दी	(५०८)	२०.	श्रीवसुनन्दी	(५२५)
२१.	वीरनन्दी	(५३१)	२२.	रत्ननन्दी	(५६१)
२३.	माणिक्यनन्दी	(५८५)	२४.	मेघचन्द्र	(६०१)
२५.	शांतिकीर्ति	(६२७)	२६.	मेरुकीर्ति	(६४२)

उपर्युक्त छब्बीस आचार्य दक्षिणदेशस्थ भद्दिलपुर के पट्टाधीश हुए।

२७.	महाकीर्ति	(६८६)	२८.	विष्णुनन्दी	(७०४)
२९.	श्रीभूषण	(७२६)	३०.	शीलचन्द्र	(७३५)

---

४. The indian Antiquary, Vol. XX , October 1891, pp. 351-355. आचार्य हस्तीमल जी ने यह पट्टावली डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य-कृत 'तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य-परम्परा' खण्ड ४ (पृष्ठ ४४१-४४३) से उद्धृत की है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३१.	श्रीनन्दी	(७४९)	३२.	देशभूषण	(७६५)
३३.	अनन्तकीर्ति	(७६५)	३४.	धर्मनन्दी	(७८५)
३५.	विद्यानन्दी	(८०८)	३६.	रामचन्द्र	(८४०)
३७.	रामकीर्ति	(८५७)	३८.	अभयचन्द्र	(८७८)
३९.	नरचन्द्र	(८९७)	४०.	नागचन्द्र	(९१६)
४१.	नयनन्दी	(९३९)	४२.	हरिनन्दी	(९४८)
४३.	महीचन्द्र	(९७४)	४४.	माघचन्द्र	(९९०)

उपर्युल्लिखित महाकीर्ति से माघचन्द्र तक अट्ठारह आचार्य उज्जयिनी के पट्टाधीश हुए।

४५.	लक्ष्मीचन्द्र	(१०२३)	४६.	गुणनन्दी	(१०३७)
४७.	गुणचन्द्र	(१०४८)	४८.	लोकचन्द्र	(१०६६)

ये चार आचार्य चन्देरी (बुन्देलखण्ड) के पट्टाधीश हुए।

४९.	श्रुतकीर्ति	(१०७९)	५०.	भावचन्द्र	(१९६४)
५१.	महाचन्द्र	(१११५)			

ये तीन आचार्य भेलसा (भूपाल) सी० पी० के पट्टाधीश हुए।

५२.	माघचन्द्र	(११४०)			

ये आचार्य कुण्डलपुर (दमोह) के पट्टाधीश हुए।

५३.	ब्रह्मनन्दी	(११४४)	५४.	शिवनन्दी	(११४८)
५५.	विश्वचन्द्र	(११५५)	५६.	ह्रदिनन्दी	(११५६)
५७.	भावनन्दी	(११६०)	५८.	सूरकीर्ति	(११६७)
५९.	विद्याचन्द्र	(११७०)	६०.	सूरचन्द्र	(११७६)
६१.	माघनन्दी	(११८४)	६२.	ज्ञाननन्दी	(११८८)
६३.	गंगकीर्ति	(११९९)	६४.	सिंहकीर्ति	(१२०६)

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ये बारह आचार्य वारां के पट्टाधीश हुए।

६५.	हेमकीर्ति	(१२०९)	६६.	चारुनन्दी	(१२१६)
६७.	नेमिनन्दी	(१२२३)	६८.	नाभिकीर्ति	(१२३०)
६९.	नरेन्द्रकीर्ति	(१२३२)	७०.	श्रीचन्द्र	(१२४१)
७१.	पद्म	(१२४८)	७२.	वर्द्धमानकीर्ति	(१२५३)
७३.	अकलंकचन्द्र	(१२५६)	७४.	ललितकीर्ति	(१२५७)
७५.	केशवचन्द्र	(१२६१)	७६.	चारुकीर्ति	(१२६२)
७७.	अभयकीर्ति	(१२६४)	७८.	वसन्तकीर्ति	(१२६४)

इण्डियन एण्टीक्वेरी की जो पट्टावली मिली है, उसमें उपर्युक्त चौदह आचार्यों का पट्ट ग्वालियर में होना लिखा है, किन्तु वसुनन्दी-श्रावकाचार में इनका चित्तौड़ में होना लिखा है। परन्तु चित्तौड़ के भट्टारकों की अलग भी पट्टावली है, उसमें ये नाम नहीं पाये जाते। संभव है कि ये आचार्य ग्वालियर में ही हुए हों। इनको ग्वालियर की पट्टावली से मिलाने पर निर्णय किया जा सकता है।

७९.	प्रख्यातकीर्ति	(१२६६)	८०.	शुभकीर्ति	(१२६८)
८१.	धर्मचन्द्र	(१२७१)	८२.	रत्नकीर्ति	(१२९६)
८३.	प्रभाचन्द्र	(१३१०)			

ये पाँच आचार्य अजमेर में हुए।

८४.	पद्मनन्दी	(१३८५)	८५.	शुभचन्द्र	(१४५०)
८६.	जिनचन्द्र	(१५०७)			

ये तीन आचार्य दिल्ली में पट्टाधीश हुए।

इनके पश्चात् पट्ट दो भागों में विभक्त हो गया। एक गद्दी नागौर में स्थापित हुई और दूसरी चित्तौड़ में। चित्तौड़-पट्ट के आचार्यों के नाम इस प्रकार हैं—

८७.	प्रभाचन्द्र	(१५७१)	८८.	धर्मचन्द्र	(१५८१)
८९.	ललितकीर्ति	(१६०३)	९०.	चन्द्रकीर्ति	(१६२२)
९१.	देवेन्द्रकीर्ति	(१६६२)	९२.	नरेन्द्रकीर्ति	(१६९१)
९३.	सुरेन्द्रकीर्ति	(१७२२)	९४.	जगत्कीर्ति	(१७३३)

९५.	देवेन्द्रकीर्ति	(१७७०)	९६.	महेन्द्रकीर्ति	(१७९२)
९७.	क्षेमेन्द्रकीर्ति	(१८१५)	९८.	सुरेन्द्रकीर्ति	(१८२२)
९९.	सुखेन्द्रकीर्ति	(१८५९)	१००.	नयनकीर्ति	(१८७९)
१०१.	देवेन्द्रकीर्ति	(१८८३)	१०२.	महेन्द्रकीर्ति	(१९३८)

नागौर के भट्टारकों की नामावली

१.	रत्नकीर्ति	(१५८१)	२.	भुवनकीर्ति	(१५८६)
३.	धर्मकीर्ति	(१५९०)	४.	विशालकीर्ति	(१६०१)
५.	लक्ष्मीचन्द्र		६.	सहस्रकीर्ति	
७.	नेमिचन्द्र		८.	यशकीर्ति	
९.	भुवनकीर्ति		१०.	श्रीभूषण	
११.	धर्मचन्द्र		१२.	देवेन्द्रकीर्ति	
१३.	अमरेन्द्रकीर्ति		१४.	रत्नकीर्ति	
१५.	ज्ञानभूषण		१६.	चन्द्रकीर्ति	
१७.	पद्मनन्दी		१८.	सकलभूषण	
१९.	सहस्रकीर्ति		२०.	अनन्तकीर्ति	
२१.	हर्षकीर्ति		२२.	विद्याभूषण	

२३. हेमकीर्ति—ये आचार्य १९१० माघ शुक्ला द्वितीया सोमवार को पट्ट पर बैठे। इनके पश्चात्

२४.	क्षेमेन्द्रकीर्ति	२५.	मुनीन्द्रकीर्ति
२६.	कनककीर्ति		

''नन्दिसंघ की यह पट्टावलि वस्तुतः भट्टारकपरम्परा की मूल पट्टावली है। इस पट्टावली की क्रमसंख्या ३ पर उल्लिखित आचार्य माघनन्दी नन्दिसंघ के मूलपुरुष अथवा आचार्य थे। और उनके नन्दी-अन्त नाम के आधार पर इस संघ का नाम नन्दिसंघ प्रचलित हुआ। इस पट्टावली के सभी आचार्यों के लिये इसमें सात बार **पट्टाधीश** विशेषण और दो बार **भट्टारक** विशेषण का प्रयोग किया गया है। भट्टारकपरम्परा के बलात्कारगण की पट्टावली में भी इस परम्परा के भट्टारकों के पूर्णतः वे ही नाम

दिये हैं, जो इसमें हैं।[५] अनेक शिलालेखों से भी इस बात की पुष्टि होती है कि इस पट्टावली में जिन आचार्यों के नाम दिये हुए हैं, वे भट्टारक थे। क्रम सं० ८४ पर उल्लिखित पद्मनन्दी का पट्टाभिषेक उनके गुरु प्रभाचन्द्र ने किया।[६] इन्हीं भट्टारक पद्मनन्दी के तीन शिष्यों से तीन भट्टारक परम्पराएँ और उनसे अनेक शाखाएँ-प्रशाखाएँ प्रचलित हुईं ।[७] (जै. ध. मौ. इ. / भा. ३ / पृ. १३६ - १३९)।

''इन सब तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में विचार करने पर निर्विवादरूप से सिद्ध हो जाता है कि नन्दीसंघ की यह पट्टावली वस्तुतः भट्टारकपरम्परा की ही पट्टावली है और इस पट्टावली के तीसरे आचार्य माघनन्दी ही उस प्रथम स्वरूपवाली भट्टारकपरम्परा के प्रवर्तक थे, जिस पर ऊपर विशदरूपेण प्रकाश डाला गया है। (वही/पृ.१४०)।

''इस पट्टावली के अतिरिक्त एक और भी बहुत बड़ा प्रबल प्रमाण इस तथ्य की पुष्टि करनेवाला है कि उपरिवर्णित प्रथम स्वरूप की भट्टारकपरम्परा के जनक आदि-भट्टारक वस्तुतः भद्रबाहु द्वितीय के प्रशिष्य एवं आचार्य गुप्तिगुप्त के शिष्य माघनन्दी थे। वह प्रबल प्रमाण यह है कि इस पट्टावली में भट्टारकपरम्परा का पाँचवाँ पट्टाधीश आचार्य कुन्दकुन्द को बताया गया है, जो निर्विवादरूपेण दिगम्बरपरम्परा के पुनरुद्धारक, महान् क्रान्तिकारी, पुनः-संस्थापक माने गये हैं। आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने दादागुरु द्वारा संस्थापित भट्टारकपरम्परा की नव्य-नूतन मान्यताओं के विरुद्ध विद्रोह किया। वे माघनन्दी के शिष्य जिनचन्द्र के पास भट्टारकपरम्परा में ही दीक्षित हुए। मेधावी मुनि कुन्दकुन्द ने अध्ययन पूर्ण करने के पश्चात् दिगम्बरपरम्परा द्वारा सम्मत आगमों के निदिध्यासन-चिंतन-मनन से जब जिनेन्द्र-प्रभु द्वारा प्ररूपित जैनधर्म के वास्तविक स्वरूप और तीर्थंकरों द्वारा आचरित श्रमणधर्म को पहचाना, तो उन्हें अपने प्रगुरु माघनन्दी द्वारा संस्थापित धर्म और श्रमणाचार-विषयक मान्यताएँ धर्म और श्रमणाचार के मूल स्वरूप के अनुरूप प्रतीत नहीं हुईं। उन्होंने संभवतः अपने प्रगुरु, गुरु और भट्टारकसंघ द्वारा सम्मत उन कतिपय अभिनव मान्यताओं के समूलोन्मूलन और पुरातन मान्यताओं की पुनःसंस्थापना का संकल्प किया। इस प्रकार की अवस्था में गुरु-शिष्य के बीच, भट्टारकसंघ और क्रान्तिकारी मुनिपुंगव कुन्दकुन्द के बीच क्रमशः विचारभेद, मनोमालिन्य, संघर्ष और अलगाव (पृथक्त्व) का होना स्वाभाविक ही था। प्रमाणाभाव में यह नहीं कहा जा सकता कि वे स्वयं ही अपने गुरु से पृथक् हुए अथवा संघ द्वारा पृथक् किये गये। कुछ भी हो, वे पृथक् हुए और जैसा कि उत्तरकालवर्ती सभी

---

५. प्रो. जोहरापुरकर : भट्टारकसम्प्रदाय / जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर / पृष्ठ ९३।
६. वही / पृष्ठ ९१।
७. प्रो.जोहरापुरकर : भट्टारकसम्प्रदाय / पृ. ९५ / पृष्ठ ९५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

क्रियोद्धारकों—धर्मक्रान्ति के सूत्रधारों ने किया, ठीक उसी प्रकार मुनिपुंगव कुन्दकुन्द ने भी अपने गुरु और संघ की मान्यताओं के विरुद्ध क्रान्ति का शंखनाद फूँका। उस धर्मक्रान्ति में, उस क्रियोद्धार में कुन्दकुन्द को पर्याप्त सफलता मिली। भूली-बिसरी प्राचीन मान्यताओं की उन्होंने अपेक्षाकृत कड़ी कट्टरता के साथ पुनः संस्थापना की। स्वयं द्वारा की गई धर्मक्रान्ति की परिपुष्टि के लिये उन्होंने अनेक सैद्धान्तिक ग्रन्थों कीं रचनाएँ कीं, जो आज भी दिगम्बरपरम्परा में आगम-तुल्य मान्य हैं। (वही / पृ.१४०)।

"अपने गुरु से, अपने प्रगुरु द्वारा संस्थापित भट्टारकसंप्रदाय से पृथक् हो जाने के कारण ही आचार्य कुन्दकुन्द ने कहीं अपने गुरु का नामोल्लेख तक नहीं किया है। वर्तमान में दिगम्बरपरम्परा की मान्यातानुसार आचार्य कुन्दकुन्द की जितनी कृतियाँ उपलब्ध हैं, उनमें से किसी एक में भी आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने गुरु का नामोल्लेख तक नहीं किया है।" (जै. ध. मौ. इ. / भा. ३ / पृ.१४० - १४१)।

"जिस प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने किसी भी ग्रंथ में अपने गुरु का, साक्षात् गुरु का अथवा विद्यागुरु का नामोल्लेख नहीं किया, उसी प्रकार भट्टारकपरम्परा के आचार्य वीरसेन (धवलाकार, वि० सं० ८१६, ८३०), जिनसेन (जयधवलाकार, वि० सं० ८३७), गुणभद्र, लोकसेन (उत्तरपुराणकार, वि० सं० ९५५) ने, हरिवंशपुराणकार आचार्य जिनसेन (विक्रम की नौवीं शताब्दी) ने तथा तिलोयपण्णत्तिकार यतिवृषभ (वि० सं० ५३५) ने अपने ग्रन्थों में आचार्य कुन्दकुन्द का कहीं नामोल्लेख तक नहीं किया है। इससे यही अनुमान किया जाता है कि आचार्य कुन्दकुन्द भट्टारकपरम्परा से पृथक् हुए थे अथवा पृथक् किये गये थे।"(वही / पृ.१४१)।

आचार्य हस्तीमल जी का यह निष्कर्ष युक्ति और प्रमाण के विरुद्ध है। यह उद्धृत पट्टावली में निर्दिष्ट तथ्यों से ही सिद्ध होता है। इसका प्ररूपण आगे किया जायेगा। पहले प्रमाण के लिए उपर्युक्त 'दि इण्डियन एण्टिक्वेरी' में प्रकाशित पट्टावली के मूल अँगरेजी पाठ का अवलोकन और उसके स्रोत की जानकारी प्राप्त कर लेना जरूरी है।

२

इण्डियन-एण्टिक्वेरी-पट्टावली का मूल अँगरेजी पाठ

'दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी' एक शोधपत्रिका है। प्रो० ए० एफ० रूडाल्फ हार्नले पी-एच० डी० ने श्री सेसिल बेण्डल द्वारा राजपूताना से लायी गयीं मूलसंघ के कुन्द-कुन्दान्वय, सरस्वतीगच्छ, नन्दिसंघ, बलात्कारगण की दो पट्टावलियों ('A' और 'B') के आधार पर पट्टधरों के नामादि की जो क्रमबद्ध तालिका अँगरेजी में तैयार की

थी, वह इस शोधपत्रिका के Volume XX (October 1891) में 'Tables of the Kundakunda line, or the Sarasvatī Gachchha, called the Nandi Āmnāya, or Balātkār Gaṇa, of the Mūla Saṅgha. (From MSS. A and B.)' शीर्षक से पृष्ठ 351-355 पर प्रकाशित है। उसका क्रमांक १ से २६ तक का अंश प्रकृत में उपयोगी होने के कारण अगले पृष्ठों पर उद्धृत किया जा रहा है। शेष अंश इसी अध्याय के अन्त में **विस्तृत सन्दर्भ** में द्रष्टव्य है। पट्टावली के अन्तिम स्तम्भ में प्रो० हार्नले के द्वारा की गयी टिप्पणियाँ हैं।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

२.१. प्रो० हार्नले द्वारा सम्पादित नन्दिसंघ की तालिकाबद्ध पट्टावली

क्र.1 से 26 तक

(The Indian Antiquary, Vol. XX, pp. 351-352)

TABLES OF THE KUNDAKUNDA LINE, OR THE SARASVATĪ GACHCHHA, CALLED THE NANDI ĀMNĀYA, OR BALĀTKĀRA GAṆA, OF THE MŪLA SAṄGHA. (FROM MSS. A AND B.)

Serial Number	Names	Dates of Accession		House-holder			Monk			Pontiff			Intercalary days	Total			REMARKS
		Saṁvat	Christian	Years	Months	Days	Years	Months	Days	Years	Months	Days		Years	Months	Days	
			B.C.														
01.	Bhadrabāhu II	4 Ch. S. 14	53	24	–	–	30	–	–	22	10	27	3	76	11	–	He was a Brāhman by caste.
02.	Guptigupta	26 Ph. S. 14	31	22	–	–	34	–	–	9	6	25	5	65	7	–	A Pawār by caste.
03.	Māghanandin I	36 Ā. S. 14	21	20	–	–	44	–	–	4	4	26	4	68	5	–	A Sāh by caste.
04.	Jinachandra I	40 Ph. S. 14	17	24	9	–	32	3	–	8	9	6	3	65	9	9	

Serial Number	Names	Dates of Accession		House-holder			Monk			Pontiff			Intercalary days	Total			REMARKS
		Saṁvat	Chrisian	Years	Months	Days	Years	Months	Days	Years	Months	Days		Years	Months	Days	
05.	Kundakunda	49 P. V. 8	B.C. 8	11	-	-	33	–	–	51	10	10	5	95	10	15	He had 4 other names (āhva); viz. Padmanandin, Vakragrīva, Gṛdhrapichchha, Elāchārya.
06.	Umāsvāmin	101 K. S. 8	A.D. 44	19	–	–	25	–	–	40	8	1	5	84	8	6	The Kāshṭhā Saṅgha arose in his time. (P. 5, Umāsvāti.)
07.	Lōhāchārya II	142 A. S. 14	85	21	–	–	38	–	–	10	10	20	6	69	10	26	
08.	Yaśaḥkīrti	153 J. S. 10	96	12	–	–	21	–	–	58	(8)	(21)	(5)	91	(9)	(15)	A Jāyalwāl by caste.
09.	Yaśōnandin	211 Ph. V. 11	154	16	–	–	17	–	–	46	4	9	4	79	4	13	
10.	Dēvanandin I	258 As. S. 8	201	11	5	–	15	7	–	49	10	28	4	76	11	2	A Paurwāl by caste.
11.	Pūjyapāda	308 J. S. 10	251	15	–	–	11	7	–	44	11	22	7	71	6	29	

Serial Number	Names	Dates of Accession		House-holder			Monk			Pontiff			Intercalary days	Total			REMARKS
		Saṁvat	A.D.	Years	Months	Days	Years	Months	Days	Years	Months	Days		Years	Months	Days	
19.	Harinandin	(508) M. S. 11	451	9	–	–	15	–	–	16	7	15	14	40	7	29	(Both MSS. give saṁ 508. P. 10 has Simhanandin).
20.	Vasunandin	525 Ā. S. 10	468	10	–	–	30	–	–	6	2	22	9	46	3	1	
21.	Vīranandin	531 P. S. 11	474	9	–	–	13	–	–	30	–	14	10	52	–	24	(MS. B gives Pōsa S. 12.)
22.	Ratnakīrti	561 M. S. 5	504	8	–	–	12	–	–	23	4	7	11	43	4	18	(P. 10, Ratnanandin.)
23.	Māṇīkanandin	585 As. V. 8	528	10	–	–	19	–	–	16	5	10	15	45	5	25	(P.11, Māṇikyanandin.)
24.	Mēghachandra	601 P. V. 3	544	24	3	27	6	7	13	25	5	20	12	56	(6)	(2)	(P.11, Mēghēndu.)
25.	Śāntikīrti I	627 As. V. 5	570	7	–	–	10	–	–	15	–	25	20	32	1	15	
26.	Mērukīrti	642 Ś. S. 5	585	8	–	–	11	–	–	44	3	16	13	63	3	29	These 26 pontificates took place in Bhaddalpur in Mālwā (MS.B gives Ś. vadi 5.)

२.२. स्तम्भों (कालमों) में प्रयुक्त संकेताक्षरों का अभिप्राय

इस तालिका के तीसरे स्तम्भ (Saṁvat) में जो संकेताक्षर प्रयुक्त किये गये हैं, उनका अभिप्राय इस प्रकार है—Saṁvat = विक्रमसंवत्, Ch.= चैत्र, S.= सुदि, V.= वदि, Ph.= फागुन, (फाल्गुन), Ā or A.= आसोज या असा (अश्वयुज या आश्विन), P.= पोस, (पोषध) अर्थात् पौष, K.= काती (कार्तिक), J.= जेष्ठ (ज्येष्ठ), As.= असाढ़ (आषाढ़), Bh.= भादवा (भाद्रपद), M.= माह (माघ), Ś.= श्रावण, Mr.= मार्गसिर (मार्गशीर्ष), V.= वैसाख (वैशाख)। इसी प्रकार क्रमांक ६ (उमास्वामी) के अन्तिम स्तम्भ (Remarks) में कोष्ठक के भीतर जो (P. 5 Umāsvāti) लिखा हुआ है, वहाँ P.= अक्षर प्रोफेसर पीटर्सन की सूची का सूचक है। (The Indian Antiquary , Vol. XX , p. 344)।

२.३. आ. हस्तीमल जी-उद्धृत पट्टावली में इण्डि. ऐण्टि.-पट्टावली से कुछ भिन्नता

प्रो० हार्नले ने A और B पट्टावलियों के आधार पर पट्टधरों की जो अँगरेजी में तालिका तैयार कर 'दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी' (Vol. XX, pp.351-355) में प्रकाशित की थी, उसे डॉ० नेमिचन्द्र जी शास्त्री ने अनुवादित कर अपने ग्रन्थ 'तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्यपरम्परा' (खण्ड ४/पृ. ४४१-४४३) में उद्धृत किया है। आचार्य हस्तीमल जी ने उसे यथावत् अपने ग्रन्थ 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' (भाग ३/पृ.१३६-१३९) में ग्रहण कर लिया है। डॉ० नेमिचन्द्र जी शास्त्री ने उक्त तालिका का पूर्णतः अनुवाद नहीं किया और कुछ अंश अन्य स्रोतों से ग्रहण कर उसमें जोड़ दिये हैं, जिससे वह इण्डियन ऐण्टिक्वेरी-पट्टावली से कुछ भिन्न हो गयी है। वही भिन्नता आचार्य हस्तीमल जी द्वारा उद्धृत पट्टावली में दृष्टिगोचर होती है। यथा—

१. इण्डियन-ऐण्टिक्वेरी-पट्टावली में Serial Number से लेकर Remarks तक ९ मूल स्तम्भ हैं। इनमें से डॉ. नेमिचन्द्र जी शास्त्री ने Serial Number, Names एवं Saṁvat के अतिरिक्त शेष समस्त स्तम्भों का अनुवाद छोड़ दिया है। Dates of accession नामक तीसरे स्तम्भ से केवल विक्रमसंवत् के वर्ष का उल्लेख किया है, संवत् शब्द का नहीं, तथा Christian (B.C./A.D.) सन् का भी उल्लेख छोड़ दिया है। फलस्वरूप यही न्यूनताएँ आचार्य हस्तीमल जी द्वारा उद्धृत पट्टावली में मिलती हैं।

२. डॉ० नेमिचन्द्र जी शास्त्री ने क्र. ११ पर 'पूज्यपाद' के स्थान में 'जयनन्दी' नाम का उल्लेख किया है, जो The Indian Antiquary (Vol. XXI) में पृष्ठ ७४ पर मुद्रित C पट्टावली में मिलता है। इसी प्रकार क्र. १९ पर 'हरिनन्दी' की जगह 'सिंहनन्दी' नाम रखा है, जिसे प्रो० हार्नले ने Remarks के कॉलम में पीटर्सन

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

की सूची में उल्लिखित बतलाया है। शास्त्री जी ने क्र. १७ पर 'नेमिचन्द्र' के स्थान पर 'नेमचन्द्र', क्र. ४२ पर हरिचन्द्र की जगह हरिनन्दी, क्र. ७१ पर पद्मकीर्ति के स्थान पर पद्म, तथा क्र. ८० पर शान्तिकीर्ति के बदले शुभकीर्ति लिखा है। शास्त्री जी का अनुकरण करने के कारण आचार्य हस्तीमल जी द्वारा उद्धृत पट्टावली में भी ये भिन्नताएँ उपलब्ध होती हैं।

३. इण्डियन-ऐण्टिक्वेरी-पट्टावली में क्र. २६ के अन्तिम स्तम्भ में 'मालवा में स्थित भद्दलपुर' (Bhaddalpur in Mālwā) लिखा हुआ है। डॉ० नेमिचन्द्र जी शास्त्री ने उसके स्थान में 'दक्षिणदेशस्थ भट्टिलपुर' तथा आचार्य हस्तीमल जी ने 'दक्षिण-देशस्थ भद्दिलपुर' लिखा है। 'दि इण्डिन ऐण्टिक्वेरी, Vol. XXI (मार्च १८९२/पृ.६९) में उद्धृत C पट्टावली में भी भद्दलपुर को भद्दलपुरी कहते हुए दक्षिणदेशस्थ बतलाया गया है। यथा— 'ता के पीछैं भद्रबाहु सौं लेर मेरुकीर्ति ताँई पट्ट छव्वीस पर्यन्त दक्षिणदेश विषैं भद्दलपुरी मैं भए॥ २६॥''

४. इण्डियन-ऐण्टिक्वेरी-पट्टावली में क्र. २७ (महाकीर्ति) से लेकर क्र. ५१ तक २५ पट्टधरों को 'उजैन' (उज्जयिनी) का पट्टधर बतलाया गया है, जब कि डॉ० नेमिचन्द्र जी शास्त्री ने और उनके अनुसार आचार्य हस्तीमल जी ने क्र. २७ से क्र.४४ (माघचन्द्र-प्रथम) तक अठारह को उज्जयिनी का, क्र. ४५ (लक्ष्मीचन्द) से क्र. ४८ (लोकचन्द्र-द्वितीय) तक चार को चन्देरी (बुन्देलखण्ड) का और क्र. ४९ (श्रुतकीर्ति) से क्र. ५१ (महीचन्द्र-द्वितीय, पीटर्सन के अनुसार महाचन्द्र) तक तीन को भेलसा (भूपाल, सी.पी.) का (जो वर्तमान में 'विदिशा' नाम से प्रसिद्ध है) पट्टधर दर्शाया है।

यह C पट्टावली के निम्नलिखित वर्णन पर आधारित है— ''बहुरि महाकीर्ति आदि लेर महीचन्द्रान्त ताँई छव्वीस पट्ट मालवा विषैं। ता मैं अठारह १८ उज्जैनी मैं भये। चन्देरी के विषैं ४ च्यार भए। भेल मैं ३ तीन भए। कुण्डलपुर एक भए १॥ यह सर्व छव्वीस २६ भए।'' (दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, Vol.XXI, पृ. ६९)। यहाँ 'महीचन्द्रान्त' के स्थान में 'माघचन्द्रान्त' होना चाहिए था, क्योंकि प्रो. हार्नले द्वारा निर्मित तालिका C में माघचन्द्र II ही क्र. ५२ पर दर्शाये गये हैं। (वही / पृ.७६)। अर्थात् उनको मिलाकर ही छब्बीस पट्टधर मालवा में होते हैं, यद्यपि चन्देरी और कुण्डलपुर बुन्देलखण्ड में आते हैं।

५. इण्डियन-ऐण्टिक्वेरी-पट्टावली में क्र. ५२ के माघचन्द्र-द्वितीय को वारा का पट्टधर कहा गया है, किन्तु डॉ० नेमिचन्द्र जी शास्त्री एवं आचार्य हस्तीमल जी ने C पट्टावली के आधार पर उनको कुण्डलपुर (दमोह) का पट्टधर लिखा है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

६. इण्डियन-ऐण्टिक्वेरी-पट्टावली में क्र. ५३ (वृषभनन्दी, पीटर्सन के अनुसार ब्रह्मनन्दी) से क्र. ६३ (गंगकीर्ति) तक ग्यारह को वारा का पट्टधर दर्शाया गया है, जब कि डॉ० नेमिचन्द्र जी शास्त्री और आचार्य हस्तीमल जी ने क्रमांक ६४ के सिंहकीर्ति को भी वारा के पट्टधरों में शामिल किया है, जो इण्डियन-ऐण्टिक्वेरी-पट्टावली में ग्वालियर के पट्टधर कहे गये हैं, तथा इन दोनों ने वृषभनन्दी के स्थान में ब्रह्मनन्दी का उल्लेख किया है। यह कथन भी C पट्टावली का अनुसरण करता है। उसमें कहा गया है—"बहुरि ता के पीछैं वृषभनन्दि आदि सिंहकीर्ति अन्त ताँई पट्ट वारह १२ वाराँ विषैं भए ॥ १२॥" (दि इण्डियन ऐटिक्वेरी, Vol. XXI, पृ. ६९)।

७. इण्डियन-ऐण्टिवेरी-पट्टावली में क्र. ६५ (हेमकीर्ति) से क्र. ७७ (अभयकीर्ति) तक तेरह आचार्य भी ग्वालियर के पट्टधर वर्णित किये गये हैं, किन्तु डॉ० नेमिचन्द्र जी शास्त्री एवं आचार्य हस्तीमल जी ने इनमें क्र. ७८ के वसन्तकीर्ति को भी सम्मिलित किया है, जब कि इण्डियन-ऐण्टिक्वेरी-पट्टावली में ये अजमेर के पट्टधर बतलाये गये हैं।

८. इण्डियन-ऐण्टिक्वेरी-पट्टावली में क्र. ७९ (प्रक्षातकीर्ति = प्रख्यातकीर्ति, देखिए Remarks) से क्र. ८३ (प्रभाचन्द्र-द्वितीय) तक पाँच अजमेर के पट्टधर कहे गये हैं। डॉ० नेमिचन्द्र जी शास्त्री एवं आचार्य हस्तीमल जी ने भी इन्हें अजमेर का पट्टधर बतलाया है।

९. इण्डियन-ऐण्टिक्वेरी-पट्टावली में क्र. ८४ (पद्मनन्दी) से क्र. ८७ (जिनचन्द्र-द्वितीय) तक चार दिल्ली के पट्टधर उल्लिखित हैं। इनमें प्रभाचन्द्र-तृतीय को क्र. ८६ पर तथा जिनचन्द्र-द्वितीय को क्र. ८७ पर दर्शाया गया है। किन्तु B पट्टावली तथा पीटर्सन की सूची में जिनचन्द्र (वि० सं० १५०७) को पहले तथा प्रभाचन्द्र (वि० सं० १५७१) को तदनन्तर रखा गया है। (S.No. 86 , Remarks)।

इण्डियन-एण्टिक्वेरी-पट्टावली के अनुसार जिनचन्द्र-द्वितीय (क्र. ८७) चित्तौड़ के पट्टधर थे और उनके समय (वि० सं० १५७२) में यह पट्ट चित्तौड़पट्ट और नागौरपट्ट, इन दो भागों में विभाजित हो गया। किन्तु , जिनचन्द्र-द्वितीय की मृत्यु के बाद ही वि० सं० १५१८ में दोनों स्थानों में स्वतन्त्र पट्टाधर नियुक्त किये गये। (S.No. 87, Remarks, F.N.64)।

डॉ० नेमिचन्द्र जी शास्त्री एवं आचार्य हस्तीमल जी ने इण्डियन-ऐण्टिक्वेरी-पट्टावली में दर्शाये क्रम के विपरीत पाण्डुलिपि B (S. No. 86, Remarks) का अनुसरण करते हुए जिनचन्द्र (द्वितीय) को क्र. ८६ पर और प्रभाचन्द्र (तृतीय) को क्र. ८७ पर रखा है, तथा तदनुसार जिनचन्द्र को दिल्ली का और प्रभाचन्द्र को चित्तौड़ का

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पट्टधर बतलाया है। इस प्रकार जहाँ इण्डियन-ऐण्टिक्वेरी-पट्टावली में धर्मचन्द्र-द्वितीय (क्र.८८) से लेकर महेन्द्रकीर्ति-द्वितीय (क्र.१०२) तक चित्तौड़ में पन्द्रह पट्टधर दर्शाये गये हैं, वहाँ डॉ० नेमिचन्द्र जी शास्त्री एवं आचार्य हस्तीमल जी ने प्रभाचन्द्र (क्र.८७) से लेकर महेन्द्रकीर्ति (क्र.१०२) तक सोलह बतलाये हैं।

१०. इण्डियन-ऐण्टिक्वेरी-पट्टावली में नागौर में रत्नकीर्ति-तृतीय (क्र.८८) से विशालकीर्ति (क्र.९१) तक चार पट्टधर, तत्पश्चात् भुवनभूषण (क्र.१०५) से भुवनकीर्ति-द्वितीय (क्र.१०८) तक पुनः चार पट्टधर वर्णित हैं। और क्र. ९१ के Remarks में उल्लेख किया गया है कि पाण्डुलिपि A क्र.९१ के बाद से क्र.१०५ के पूर्व तक पुनः नष्ट हो गई है। प्रो० हार्नले ने The Indian Antiquary (Vol. XX) के पृ. ३४१ पर भी लिखा है—

"MS. A, unfortunately, is defective in two places. The pontificates, Nos. 66-78 and Nos. 92-104 (both inclusive), are missing. The first lacuna (Nos. 66-78) is, in the following table, filled up from MS. B^3, but the second lacuna (Nos. 92-104) could not be supplied from that source, as the two manuscripts begin to diverge with Nos. 88."

(Foot Note 3) "As MS. B only gives the dates of accession, I have filled in the particulars, relating to the length of the different periods of the lives, from another paṭṭāvalī in my possession which I hope to publish hereafter." (Ibid., p. 341).

अनुवाद—"दुर्भाग्य से पाण्डुलिपि A दो स्थानों पर त्रुटिपूर्ण है। क्र. ६६-७८ और क्र. ९२-१०४ तक पट्टधरों के नाम अविद्यमान हैं। इनमें से पहले रिक्तस्थान (क्र.६६-७८) तो पाण्डुलिपि B से भर दिये गये हैं, किन्तु दूसरे रिक्त स्थान (क्र. ९२-१०४) उक्त स्रोत से नहीं भरे जा सके, क्योंकि दोनों पाण्डुलिपियों में क्रमांक ८८ से भिन्न-भिन्न स्थानों के पट्टधरों की नामावलियाँ शुरू हो जाती हैं (अर्थात् पाण्डुलिपि A में क्र. ८८ से केवल नागौर के पट्टधरों के नाम हैं और पाण्डुलिपि B में केवल चित्तौड़ के)।"

अनुवाद (Foot Note 3)—"चूँकि पाण्डुलिपि B में केवल पट्टारोहण की तिथियों का वर्णन है, इसलिए मैंने जीवन की विभिन्न कालावधियों की दीर्घता से सम्बन्धित तथ्य एक अन्य पट्टावली से उपलब्ध किये हैं, जो मेरे पास है। उसे मैं इसके बाद प्रकाशित करने की सोच रहा हूँ।"

निष्कर्ष यह है कि इण्डियन-ऐण्टिक्वेरी-पट्टावली में नागौरपट्ट के केवल आठ पट्टधर ही वर्णित हैं, जब कि डॉ० नेमिचन्द्र जी शास्त्री और उनका अनुसरण करनेवाले

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

आचार्य हस्तीमल जी ने नागौरपट्ट में छब्बीस पट्टधरों का उल्लेख किया है। उनमें से प्रथम चार ही इण्डियन-ऐण्टिक्वेरी-पट्टावली में मिलते हैं। उक्त अतिरिक्त नाम 'दि इण्डियन-ऐण्टिक्वेरी' Vol. XXI की C, D एवं E पट्टावलियों में भी नहीं हैं। प्रो० विद्याधर जोहरापुराकर ने जैनमन्दिरों में प्राप्त पट्टावलियों, जिनप्रतिमालेखों, अणुव्रतरत्नप्रदीप, वसुनन्दिश्रावकाचार, पाण्डवपुराण आदि ग्रन्थों की प्रस्तावनाओं तथा रविव्रतकथा आदि के वर्णनों से बलात्कारगण-नागौर-शाखा के पट्टधरों की कालक्रमानुसार नामावली तैयार की है, जिसमें रत्नकीर्ति से लेकर कनककीर्ति पर्यन्त २६ पट्टधरों एवं तत्कालीन पट्टधर श्री देवेन्द्रकीर्ति के नाम हैं। जोहरापुरकर जी ने इनका विवरण सन् १९५८ में प्रकाशित अपने ग्रन्थ **भट्टारकसम्प्रदाय** (पृ. ११४-१२५) में दिया है। डॉ० नेमिचन्द्र जी शास्त्री ने इस ग्रन्थ से ही उक्त शेष २२ पट्टधरों के नाम ग्रहण किये हैं। अत: वे आचार्य हस्तीमल जी द्वारा उद्धृत पट्टावली में में भी दृष्टिगोचर होते हैं। इसलिए ये नाम भी प्रामाणिक हैं। इनमें से २३वें पट्टधर हेमकीर्ति विक्रम सं० १९१० (ई० सन् १८५३) में नागौरपट्ट पर आरूढ़ हुए थे। इनके बाद आरूढ़ होनेवाले तीन पट्टधरों में से अन्तिम कनककीर्ति के पट्टकाल की समाप्ति वि० सं० १९५० (ई० सन् १८९३) में घटित होती है। इण्डि०-ऐण्टि०-पट्टावली में अन्तिम पट्टधर चित्तौड़पट्ट के महेन्द्रकीर्ति-द्वितीय बतलाये गये हैं। उनका पट्टारोहणकाल वि० सं० १८८१ (ई० सन् १८२४) वर्णित है।

३

इण्डियन-ऐण्टिक्वेरी-पट्टावली की आधारभूत पट्टावलियाँ

ई० सन् १८८५ में राजपूताना की यात्रा के समय श्री सेसिल बेण्डल (Mr. Cecil Bendall) को जयपुर के पण्डित श्री चिमनलाल जी ने सरस्वतीगच्छ की दो पट्टावलियाँ प्रदान की थीं। श्री बेण्डल ने वे प्रो०(डॉ०) ए० एफ० रूडाल्फ हार्नले (Rudolf Hoernle) को सौंप दीं। हार्नले ने उन पट्टावलियों को क्रमश: 'ए' और 'बी' अक्षरों से चिह्नित किया। 'ए' पट्टावली में पट्टावली के साथ प्रस्तावना भी दी गयी है। प्रस्तावना में भगवान् महावीर से लेकर द्वितीय भद्रबाहु और उनके चार शिष्यों तक का विवरण है, जिनमें प्रथम हैं नन्दिसंघ के संस्थापक माघनन्दी। विवरण प्राकृत गाथाओं में है, जो किसी पुराने स्रोत से उद्धृत की गई हैं[८] और राजपूतानी बोली में उनका खुलासा किया गया है। प्रस्तावना के अनन्तर नन्दिसंघ या सरस्वतीगच्छ की पट्टावली अर्थात् उत्तराधिकारी गुरुओं की नामावली वर्णित है। यह द्वितीय भद्रबाहु से आरंभ होती है और १०८ वें पट्टाधीश भुवनकीर्ति पर समाप्त होती है, जो संवत् १८४० (ई० सन् १७८३) में पट्टारूढ़ हुए थे तथा उस समय भी आरूढ़ थे, जब यह पट्टावली

८. Prof. Hoernle : The Indian Antiqary, Vol. XX, p.341.

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

रची गयी थी। 'ए' पट्टावली दो जगह दोषपूर्ण है। उसमें क्रमांक ६६ से ७८ तक तथा ९२ से १०४ तक के पट्टधरों के नाम विद्यमान नहीं हैं। प्रथम रिक्ति (क्र. ६६-७८) हार्नले द्वारा तैयार की गई सूची (तालिका) में 'बी' पट्टावली से भरी गयी है, किन्तु दूसरी रिक्ति को इस पट्टावली से भरना संभव नहीं हुआ, क्योंकि ये दोनों पट्टावलियाँ क्रमांक ८८ से भिन्न-भिन्न गुरुपरम्पराओं में विभाजित हो जाती हैं।[९]

'बी' पट्टावली में केवल पट्टावली है, प्रस्तावना नहीं। किन्तु यह परिपूर्ण है। यह भी संवत् ४ (ईसापूर्व ५३) में पट्टारूढ़ हुए द्वितीय भद्रबाहु से शुरू होती है[१०] और क्र. १०२ के पट्टधर महेन्द्रकीर्ति पर समाप्त होती है, जो संवत् १९३८ (ई० सन् १८८१) में पदारूढ़ हुए थे और उस समय जयपुर में निवास कर रहे थे, जब श्री बेण्डल ने उस नगर की यात्रा की थी।[११]

उक्त दो पट्टावलियाँ एक ही अन्वय की दो शाखाओं से सम्बद्ध हैं। वे शाखाएँ उस अन्वय के ८७ वें पट्टधर के पश्चात् उद्भूत हुई थीं। 'ए' पट्टावली की एक टिप्पणी के अनुसार यह विभाजन संवत् १५७२ (ई० सन् १५१५) में हुआ था। विभाजित होकर एक शाखा नागौर चली गई थी, दूसरी चित्तौड़ में ही रही आयी। चित्तौड़ ८७ वें पट्टधर का पट्टस्थान था। वे दोनों शाखाओं के मूल पट्टधर थे। 'ए' पट्टावली के अनुसार ८७ वें पट्टधर जिनचन्द्र थे, जिन्हें प्रभाचन्द्र का उत्तराधिकार प्राप्त हुआ था। किन्तु 'बी' पट्टावली के अनुसार ८७ वें पट्टधर प्रभाचन्द्र थे, उनके ही समय में अन्वय विभाजित हुआ था। जिनचन्द्र उनके शिष्य थे। ८७ वें पट्टधर के बाद दोनों शाखाओं के अलग-अलग पट्टधर हो गये। इसलिए दोनों की पृथक्-पृथक् पट्टावलियाँ प्राप्त होती हैं। 'ए' पट्टावली नागौर शाखा की प्रतीत होती है और 'बी' पट्टावली चित्तौड़ शाखा की।[११]

दोनों पट्टावलियों में तिथियों का पूर्ण विवरण दिया गया है। 'बी' पट्टावली में प्रत्येक पट्टधर के पट्टारूढ़ होने की तिथि वर्णित है। 'ए' पट्टावली और भी विस्तृत है। इसमें न केवल पट्टारूढ़ होने की तिथि दी गई है, अपितु प्रत्येक के गृहवर्ष या गृहस्थवर्ष (घर में रहने का काल), दीक्षावर्ष (मुनिपद पर रहने का काल), पट्टवर्ष

---

९. Two Pattavalis of the Sarasvati Gachchha of the Digambara Jains, The Indian Antiquary, Vol.XX , october 1891, p.341.

१०. It also commences with Bhadrabāhu II in Saṁvat 4 (B.C. 53). The Indian Antiquary, October 1891, Vol. XX , p.341.

११. The Indian Antiquary, october 1891, Vol. XX, p.342.

या पट्टस्थवर्ष (पट्ट पर रहने का काल) तथा सर्ववर्ष या सर्वायुवर्ष (सम्पूर्ण जीवनकाल) का भी वर्णन है।[१२]

'ए' पट्टावली की प्रस्तावना में नन्दिसंघ की प्राकृत-पट्टावली के सभी श्लोकों एवं गाथाओं को उद्धृत करते हुए उनका राजपूतानी बोली में स्पष्टीकरण किया गया है। अर्थात् यही उसकी प्रस्तावना है। इस प्रस्तावना का मूलपाठ प्रो० हार्नले ने अपने आलेख में ज्यों का त्यों उद्धृत किया है, जिसे उन्होंने 'दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी' के वाल्यूम XX में निबद्ध अक्टूबर, 1891 के अंक (पृष्ठ 344 - 347) में प्रकाशित कराया था। किन्तु उन्होंने प्रस्तावना के बाद सरस्वती-गच्छ की 'ए' और 'बी' पट्टावलियों के मूल पाठ न देकर उनका सारांश एक तालिका के रूप में प्रस्तुत किया है, जिससे उनका सरलतया अध्ययन एवं जिज्ञास्य तथ्य का अवलोकन आसानी से किया जा सके। प्रो० हार्नले ने पट्टावलियों के मूलपाठ का नमूना दिखाने के लिए निम्नलिखित पहली प्रविष्टि उद्धृत की है—

"१. संवत् ४ चैत्र सुदि १४ भद्रबाहु जी, गृहस्थवर्ष २४, दीक्षावर्ष ३०, पट्टस्थवर्ष २२, मास १०, दिन २७, विरहदिन ३, सर्वायुवर्ष ७६, मास ११, जाति ब्राह्मण।"[१३]

भावाथ—संवत् ४ में, चैत्र सुदि १४ के दिन, भद्रबाहु जी पट्टारूढ़ हुए। २४ वर्ष तक वे घर में रहे, ३० वर्ष तक सामान्य साधु, तथा २२ वर्ष, १० माह और २७ दिन तक पट्टधर रहे। विरह दिन (पट्ट को त्यागने और मृत्यु होने के बीच के दिन) ३ थे। उनके जीवन का सम्पूर्ण काल ७६ वर्ष और ११ माह था। वे ब्राह्मण जाति के थे।

प्रो० हार्नले ने **विरहदिन** के विषय में लिखा है—"As to the exact meaning of the term virah (see the quotation above), I am uncertain. I have taken it to mean the time which intervened between the death of one pontiff and the enthronisation of his successor, this time varies from a few days to upwards of one month. It occurs in the first 24 entries; from the 25th entry onwards the synonymous term antara is used." (The Indian Antiquary, vol. XX, p.344).

अनुवाद—"**विरह** शब्द (देखिए, उपर्युक्त उद्धरण) के वास्तविक अर्थ के विषय में मुझे संशय है। मैंने इसे वर्तमान पट्टधर की मृत्यु और उत्तराधिकारी के पट्टासीन होने के बीच के समय का वाचक माना है। यह समय कुछ दिनों से लेकर

---

१२. वही / पृ. 343.
१३. वही / पृ. 344.

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

एक मास तक बतलाया गया है। **विरह** शब्द प्रथम २४ प्रविष्टियों में उपलब्ध होता है, पच्चीसवीं प्रविष्टि से इसके समानार्थी **अन्तर** शब्द का प्रयोग हुआ है।"

प्रो० हार्नले द्वारा ग्रहण किया गया यह अर्थ समीचीन नहीं है, क्योंकि उपर्युक्त उद्धरण में तीन विरहदिनों को मिलाकर ही सर्वायुवर्ष (सम्पूर्ण आयु के वर्ष) ७६ मास और ११ दिन बतलाये गये हैं। इससे स्पष्ट होता है कि विरह के तीन दिन भी आचार्य भद्रबाहु (द्वितीय) की सम्पूर्ण आयु में शामिल थे। प्रो० हार्नले ने स्वयं उनके सम्पूर्ण जीवनकाल को बतलाते हुए लिखा है—'The total period of his life was 76 years and 11 months. (The Indian Antiquary , Vol. XX , p. 344). इससे सिद्ध है कि उक्त पट्टावली में पट्टधर के पट्ट को त्यागने और उसकी मृत्यु होने के बीच के समय को **विरह** कहा गया है।

विशेष—प्रविष्टि के आदि में लिखित १ संख्या प्रविष्टि के क्रमांक की सूचक है। तालिका के अंतिम खाने (कॉलम) में कोष्ठस्थ टिप्पणियाँ प्रो० हार्नले की हैं, शेष समस्त टिप्पणियाँ पट्टावली के पाठ का अनुवाद हैं। 'ए' पट्टावली के कर्त्ता ने नन्दिसंघ या सरस्वतीगच्छ के आदि-पुरुष द्वितीय-भद्रबाहु की गुरु-शिष्य-परम्परा दर्शाने के लिए प्रस्तावना के रूप में नन्दिसंघ की कही जानेवाली प्राकृत पट्टावली उद्धृत की है। उसका तालिका के रूप में हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है—

नन्दिसंघ की प्राकृत-पट्टावली

वीरनिर्वाण के पश्चात् आचार्यों का पट्टकाल

१. केवली	गौतम-१२, सुधर्म-१२, जम्बूस्वामी-३८	= ६२ वर्ष
२. श्रुतकेवली	विष्णु-१४, नन्दिमित्र-१६, अपराजित-२२, गोवर्धन-१९, भद्रबाहु-२९	= १०० वर्ष
३. दशपूर्वधर	विशाख-१०, प्रोष्ठिल-१९, क्षत्रिय-१७, जयसेन-२१, नागसेन-१८, सिद्धार्थ-१७, धृतिषेण-१८, विजय-१३, बुद्धिलिंग-२०, देव-१४, धर्मसेन-१६	= १८३ वर्ष
४. एकादशांगधर	नक्षत्र-१८, जयपाल-२०, पाण्डव-३९, ध्रुवसेन-१४, कंस-३२	= १२३ वर्ष
५. दश,नव,अष्ट-अंगधर	सुभद्र-६, यशोभद्र-१८, भद्रबाहु-२३, लोहाचार्य-५०	= ९७ वर्ष

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

६. एकांगधर अर्हद्बली-२८, माघनन्दी-२१, धरसेन-१९, पुष्पदन्त-३०, भूतबलि-२० = ११८ वर्ष

महायोग ६८३ वर्ष[१४]

आचार्यों के समक्ष दी गयी संख्या वर्षसूचक है। वह सूचित करती है कि उक्त आचार्य उतने वर्ष तक आचार्यपद पर आसीन रहे।

इस प्राकृत पट्टावली के अनुसार द्वितीय भद्रबाहु वीरनिर्वाण से (६२+१००+१८३+१२३+६ (सुभद्र)+१८ (यशोभद्र)=४९२ वर्ष व्यतीत होने पर अर्थात् ४९३ वें वर्ष में पट्ट (आचार्यपद) पर आसीन हुए थे।

'ए' पट्टावली के कर्त्ता ने सरस्वतीगच्छ (नन्दिसंघ) की पट्टावली का प्रारंभ द्वितीय भद्रबाहु से किया है। किन्तु उनका पट्टारोहण-वर्ष वीर नि० सं० ४९३ के स्थान में ४९२ रखा है। यह उनके निम्नलिखित कथन से ज्ञात होता है—

''तत्र प्रथमं वीरात् वर्ष ४९२ सुभद्राचार्यात् वर्ष २४ विक्रमजन्मान्त वर्ष २२ राज्यान्त वर्ष ४ भद्रबाहु जातः ॥ गाथा॥

सत्तरि चदुसदजुत्तो तिण काला विक्कमो हवइ जम्मो।
अठ वरस वाललीला सोडस वासेहि भम्मिए देस॥ १८॥

पणरस वासे जज्जं कुणंति मिच्छोवदेससंजुत्तो।
चालीस वरस जिणवरधम्मं पालीय सुरपयं लहियं॥ १९॥''[१५]

अनुवाद—वीर निर्वाण से ४९२ वें वर्ष में, सुभद्राचार्य के पश्चात् २४ वें वर्ष में, विक्रम के जन्म के पश्चात् २२ वें वर्ष में तथा विक्रम के राज्यारोहण के अनन्तर ४ थे वर्ष में द्वितीय भद्रबाहु पट्टारूढ़ हुए थे। इस आशय की गाथाएँ भी हैं—

''वीर निर्वाण से ४७० वर्ष व्यतीत होने पर विक्रम का जन्म हुआ था। आठ वर्ष तक बालक्रीडाएँ कीं। सोलह वर्ष तक देशभ्रमण किया। पन्द्रह वर्ष तक यज्ञ करते हुए मिथ्योपदेश का अनुसरण किया। पश्चात् चालीस वर्ष तक जिनधर्म का पालन कर स्वर्ग प्राप्त किया।''

उक्त कथन के अनुसार हर प्रकार से वीरनिर्वाण के पश्चात् ४९२ वें वर्ष में ही द्वितीय भद्रबाहु का पट्टारूढ़ होना सिद्ध है। यथा—

---

१४. मूलपाठ इसी अध्याय के अन्त में 'विस्तृत सन्दर्भ' में देखिए।

१५. The Indian Antiquary, october, 1891, vol. XX, p.347.

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in